❀ श्रीसीताशरणं मम ❀

श्रीरामानन्द–साहित्यमाला–पुष्प ७७ वाँ
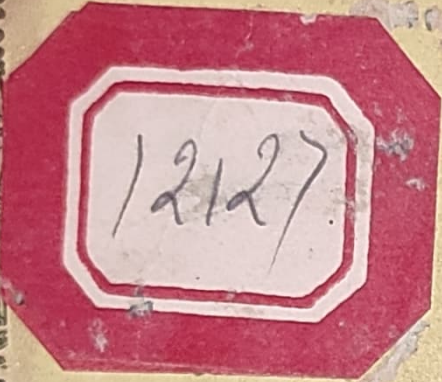
श्रीसीतामन्त्रार्थ रहस्यम्

श्रीप्रेमनिधि प्रणीतम्

❀ श्रीसीताशरणं मम ❀

श्रीसीतामन्त्रार्थ रहस्यम्

वाग्जन्म वैफल्यमसह्य शल्यं
गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत् ।
--महाकवि हर्ष ।

सीता यश वारिधि अगम-
मति पिपीलिका मोरि ।
कृपादृष्टि स्वामिनि करो
लाऊँ रतन बटोरि ॥
--श्रीरामरसामृत सिंधु ।

* श्रीप्रेमनिधि प्रणीतम् *

श्रीरामानन्द-आश्रम

जनकपुरधाम (नेपाल)

❀ प्राथमिक-निवेदन ❀

दोहा

१– सीतामन्त्र रहस्य शुचि, अति अगाध अति श्रेष्ठ।
मैं पामर वर्णन करौं, केहि विधि अर्थ यथेष्ठ॥

२– बार-बार बन्दन करौं श्रीगुरुचरण ललाम।
मन्त्र अर्थ हिय प्रगट हित, प्रेमनिधी सुख धाम॥

३– श्रीसद्गुरु पद कमल की कृपा पाय सुखरूप।
यत्किञ्चित् यह प्रेम निधि, वरणत मति अनुरूप॥

४– निजमन महँ दृढ करन हित, गुरुप्रसाद मन्त्रार्थ।
लघु प्रयास हास्यास्पद, यह विनोद चरितार्थ॥

५– मन्त्रराज मन्त्रार्थ नित, मनन करत ते धन्य।
प्रेमनिधी यहि जगत में, तेहि सम कोऊ न अन्य॥

श्रीसीतातत्त्व अत्यन्त रहस्य मय अतएव दुर्ज्ञेय है, श्रीजानकी बिन्दु में कहा है कि 'सियाजू की करुणा लखि नहि जाय। राम की तौ लखाय।" क्योंकि श्रीजू ने अपने को श्रीराम स्वरूप में छिपा रखा है। अतः श्रीसीता दर्शन ही श्रीराम दर्शन की पूर्णता है। श्रीरामचरित मानस में इसीलिये स्पष्टी करण किया है कि सबहि मनहि मन कीन्ह प्रणामा। देखि रामभये पूरण काम॥" आप्त काम पूर्णकाम प्रभु को भी पूर्ण कामत्व श्रीसीतादर्शन से ही प्राप्त होता है। श्रीतुलसी की यह अमोघ तथ्यपूत वाणी है। वस्तुतः युगल प्रभु की उपासना ही परिपूर्ण उपासना है। यथार्थतः सीता तथा राम अभिन्न तत्त्व है, तथापि सीतातत्त्व को हृदयङ्गम किये बिना

श्रीरामतत्त्व अपूर्ण ही रह जाता है! यद्यपि "राममन्त्रे स्थिता सीता" तथा" सीता मन्त्रे रघूत्तमः" यह एक सैद्धान्तिक अकाट्य तथ्य है तथापि इस रहस्य को हृदयङ्गम करने के लिये भी श्री सीतामन्त्रार्थ तथा श्रीराममन्त्रार्थ का पृथक्-पृथक् सम्यक रीति से अर्थज्ञान प्राप्त करलेना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिये भावुक रससिद्ध रसिक सन्तों में युगलमन्त्र जप तथा श्रीयुगल मन्त्र रहस्यार्थ ज्ञान प्राप्त करने की प्राचीन प्रणाली प्रचलित है। अपने हृदय में मन्त्रार्थ का स्वरूप स्थिर करने की मङ्गलमय भावना से प्रेरित होकर यह "श्रीसीता मन्त्रार्थ रहस्यम्" लिखने के लिये श्रीसद्गुरु भगवान् के पावन चरणों का स्मरण कर मैं यथामति यह मन्त्रार्थ लिखने का बालविनोद कर रहा हूँ। इस अनुचित साहस के लिये सुजन गण क्षमा प्रदान करने की उदारता अवश्यमेव करेंगे, ऐसी आशा ही नहीं दृढ विश्वास रख कर अब श्रीसीता मन्त्रार्थ का मनन करने को उद्यत हो रहा हूं। सब सन्तजन ऐसी कृपा करें कि मैं भी आपके आशीर्वाद से इस दुर्लभ रहस्य को प्राप्त कर कृतार्थ बन जाऊं-

श्रीजानकी नवमी २०३५
श्रीरामानन्द आश्रम
जनकपुर धाम (नेपाल)

चरणकमलाश्रित
अवधकिशोर दास
'प्रेमनिधि'

रसिक सन्तों के चरणों में

रसशास्त्र की दृष्टि से 'श्रीरामोरस विग्रह 'रामोरमयतांवरः' हैं, वेदों ने " "रसो वै सः "कह कर "राम एव परंब्रह्म" का ही निर्देश किया है। उस अगाध रस सागर को भी उद्वेलित तरङ्गित करने वाली स्वामिनी जी श्रीसीताजो सच्चिदानन्दमयी रसमूर्ति है।

तत्वतः दोनों अभिन्न होते हुए भी केवल रस सिद्धि के लिये युगल प्रभु के स्व रूप में दर्शन देते हैं यही कारण है कि श्रीसीता जो को स्वतन्त्र कथा महिमा का उल्लेख अत्यल्प मिलता है क्योंकि वह तो दूध में नवनीत की भांति हिली-मिली हुई हैं।

श्रीराम रसेश्वर हैं तो श्रीजानकीजी रसेश्वरी हैं। परात्परा शक्तिरूप में उनका प्राकट्य है, काव्य कल्पना की अधिष्ठात्री देवी भी उनका चरणाश्रय लेती हैं "सा भारती भगवती तु यदीयदासी" बनने में अपना सौभाग्य मानती हैं। वह प्रेमा पराभक्ति रसकी दिव्य निर्झरणी है। परम प्रेम की पावन प्रतिमा हैं। सकल कलाओं की साम्राज्ञी हैं। उनमें सदैव अविच्युत तारुण, अनुपम कारुण्य, तथा लोकोत्तर विलक्षण लावण्य देदीप्यमान रहता है। वह भावना की भव्य मूर्ति हैं। कल्पना एव चिन्तना की चिन्मयी माधुरी है। वह पराशक्ति तथा परमाणु शक्ति की अभिव्यक्ति हैं। उस पराशक्ति के निरूपण करने को उद्यत उनके श्रीचरणों की अवलम्बिनी कविजनों की लेखनी सुधारस स्यंदिनी बनी है, अन्यथा तो वह रस हीन शुष्क ही रह जाती। दिव्य अनुभूति का आलेखन करने वाली चित्रकारकी तूलिका-पिच्छिका रङ्गमयी बनने का श्रीजीके चिन्तवन से ही श्रेय प्राप्त कर सकी है। उस रस माधुरी का गान करके गायकों की स्वरावली प्राणवन्त बनी है। धार्मिक जगत् में वह पतिव्रता शिरोमणि सतियों की परमेश्वरी हैं। रस सम्प्रदाय में वह राम की रासेश्वरी हैं। वह परब्रह्म की आह्लादिनी पराशक्ति है: आद्या प्रकृति हैं। अनन्तानन्त दिव्य सुरसीमन्तिनिओं की स्वामिनी है। उनकी अनुकम्पा विना सरस्वती रसवती बनती नहीं है। लक्ष्मी श्रेयस्प्रदा बनती नहीं है। पार्वती प्रिय सम्पादिनी होती नहीं है। वह श्रीरामकी परम सिद्धिस्वरूपा श्रीसीता है, ऐसी शक्ति अन्यत्र कहीं न हो

दृष्टिगोचर होती है और न श्रवण गोचर ही। मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र तथा स्नेह ये चतुर्विध परम पुरुषार्थ उनकी कृपा पर ही अवलम्बित है। उस महेश्वरी श्री मिथिलेश दुलारी की जय हो।

मेंहदी की पत्ति के अणु अणु में जैसे लालिमा भरपूर रहती है। उसी प्रकार अखण्ड रसिकता मधुरता मञ्जुलता लावण्यता श्रीस्वामिनी जू में समा हैं। मन्त्र-तन्त्र की गोपनीयता ही सिद्धि-प्रद होती है उसी प्रकार प्रभुकी प्रीतिरस रूपा श्रीस्वामिनीजी का रहस्य गोपनीय रखने से ही प्रेम रसकी सिद्धि प्रदान करता है। मेंहदी में लालिमा छिपी हुई रहती है परन्तु लालिमा के बिना मेंहदी निरर्थक हो जाती है। दूध में चिकनाई छिपी हुई है परन्तु विना चिकनाई के दूध निरर्थक हो जाता है। रत्न में कान्ति छिपी न हो तो वह मूल्य हीन हो जाता है वैसे ही श्रीजू की सानिध्यता के विना परब्रह्म की आराधना साधना रसमय प्रेममय न होकर शुष्क ही रह जाती है यह अकाट्य सिद्धान्त है। ऐसी श्रीस्वामिनीजू का रहस्य चिन्तबन मनन करने के लिये ही यह सीता महार्थ की रहस्यम् का प्रकाशन हो रहा है। श्रीसीता उपासकों का यह प्राणधन सर्वस्व है। इस सेवा का सुअवसर पाकर यह दीन हीन दासानुदास भी कृतार्थ है तथा इसका श्रवण मनन अनुध्यासन करने वाले भी सदा कृतार्थ होते रहेंगे इसी शुभाभिलाषा से यह आप सज्जनों की सेवा में समर्पण है : श्रीसद्गुरु भगवान् की महती कृपा का यह फल है इसका रसास्वादन करने का सबको सौभाग्य प्राप्त हो यही श्रीकिशोरी जी के श्रीचरणों में बारंबार प्रार्थना है।

प्रार्थी—

अवधकिशोर दास

"प्रेमनिधि"

श्रीसीता शरणं मम
श्रीमते रामानन्दाचार्य्याय नमः

।। श्रीसीतामन्त्रार्थ रहस्यम् ।।

(मङ्गलाचरणम्)

(१)

नीलाम्भोजदलाभिराम नयनां नीलाम्बरालङ्कृताम्
गौराङ्गीं शरदिन्दुसुन्दरमुखीं विस्मेरबिम्बाधराम् ।
कारुण्यामृतवर्षिणीं हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दितां
ध्यायेद्भक्तजनेप्सितार्थ फलदां रामप्रियांजानकीम् ।

(२) श्रीसुन्दरी तन्त्र ।

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगत्
चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्य सीमा च या ।
स्निग्धत्तुङ्ग समानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा
दत्तान्नोऽखिल सम्पदोजनकजा रामप्रियासानिशम् ।

(३) श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर

साम्राज्यमर्पयति भक्तलवेप्युदग्रं
प्रेम्णा प्रदर्शयतिपादसरोजशोभाम् ।
विघ्नान्निवारयति या भजतां समन्तात्
सा जानकी विजयते कुल दैवतं नः ।।

—श्रीजानकी गीत ।

❀ मन्त्रार्थ ज्ञान की आवश्यकता ❀

उपनिषद् का सिद्धान्त है कि-

मन्त्रदाता न गुरूः न च मन्त्रार्थ वाचकः ।

मन्त्र मन्त्रार्थ यो दद्यात् स गुरुरित्यभिधीयते ॥

केवल मंत्र प्रदाता अथवा केवल मन्त्र के स्वरूप का ज्ञान प्रदान किये बिना मन्त्रार्थ व्याख्याता गुरू नहीं होता है जो मन्त्र का मूल स्वरूप तथा मन्त्रार्थं का सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करे वही गुरु कहलाता है। क्योंकि-"अविदित्वातु मन्त्रार्थं संसिद्धि नाधिगच्छति"-

मन्त्रार्थं माने मन्त्र प्रतिपाद्य देवता के स्वरूप का सम्यक् प्रकारेण ज्ञान प्राप्त किये बिना मन्त्र की यथार्थं सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। और भी स्पष्ट करते हैं कि—

मनोरर्थानुसन्धानं जपात्कोटिगुणं फलम् ।

बहिर्दीप प्रदानेन गृहस्य तमसः क्षयः ॥

मन्दिर स्थेन दीपेन ह्रियते ह्यन्तरं तमः ।

इति मत्वातु मन्त्रार्थो धारणीयो विशेषतः ॥

-श्रीरहस्यत्रय भाष्यम्

केवल मन्त्र जप की अपेक्षा अर्थं चिन्तन सहित मन्त्र जप करना कोटि गुण अधिक फलप्रद है। क्योंकि केवल घर के बाहर दीपक जलाने से घर के भीतर का अन्धकार नष्ट नहीं होता है परन्तु घर के अन्दर प्रकाश पुञ्ज दीपक प्रज्वलित करने से ही अन्दर का अंधेरा नष्ट हो जाता है। इसी पवित्र भवनासे निर-

स्तर मन्त्रार्थं का चिन्तन विशेष रूप से करते हुये मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। दूसरा कारण यह है कि–

अर्थपञ्चक ज्ञानमेव सर्व वेदेतिहास शास्त्र सर्वस्वम् ।

तत्तु मन्त्रार्थादेवज्ञायतेंअतःमन्त्रविज्ञानेन सर्व वेदेतिहासशास्त्रोभवति ॥

–श्री रहस्यत्रयभाष्यम्

अनन्त श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज श्रीरहस्यत्रय भाष्य में लिखते है कि–अर्थपञ्चक का तत्त्व ज्ञान प्राप्त करना ही वेद पुराण इतिहास शास्त्रों का सार सर्वस्व है। वह श्रीमन्त्रार्थं ज्ञान से सहज हो प्राप्त हो जाता है। अतएव मन्त्रार्थं रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने वाला सर्व वेद शास्त्र इतिहास पुराणों का मर्मज्ञ हो जाता है इसलिये भी मन्त्रार्थं ज्ञान सर्व श्रेष्ठ है। अतः अब मन्त्रार्थ का विवेचन किया जाता है–

"श्रीं-सीतायै-स्वाहा" यह षडक्षर हो "श्रीसीता मन्त्र है। इसमें तीन पद हैं। उसमें प्रथम पद 'श्रीं' बीज है। इस 'श्रीं' बीज में "श्-र्-ई-म्" इस प्रकार से चार अक्षर हैं उसका अर्थ इस प्रकार हैं—

प्रोक्ता सीता शकारेण रकाराद्राम उच्यते ।

ईकारा दीश्वरो विधात् मकाराज्जीव ईरितः ॥

श्रीशब्दस्य हि भावार्थः सूरिभिरनुभीयते ।

ईशनाद्रमणाद्वापि ईश्वरः परिकीर्तितः ॥

अभियुक्त सारावली अ. ६. (मिताक्षरा)

अर्थात् श्री शब्द का शकार सीताजू को बतलाता है; रकार से

भगवान् राम का अभिधान होता है। ईकार का अर्थ ईश्वर समझना चाहिये, और मकार से जीव का अभिधान होता है। इस तरह का अर्थ सूरियों ने श्री शब्द के अवयवार्थक का अनुमान किया है। सम्पूर्ण जगत् के नियामक तथा जगत् में व्याप्त रहकर रमण करने के कारण ईश्वर को ईश्वर कहते हैं।

और भी-

"शकारार्थः सीता सुछबि करुणैश्वर्यं विभवा,-ईकारार्थो भक्तिः स्वपतिवश युक्त्युज्ज्वल रसा। सुरेफार्थो रामो रमणरस धाम प्रियवशी, मकारार्थो जीवः रसिक युग सेवा सुखरतः" ॥

श्-कारका अर्थ है- छबि, करूणा, ऐश्वर्य तथा वैभव से परिपूर्ण श्रीमती सीताजी। ईकार का-अर्थ है- अपने प्रियतम को प्रीति से परवश बनाकर अपने आधीन रखने वाली। उज्ज्वल रस भरी भावना मयी निर्मल भक्ति रकार का अर्थ है, सबमें रमण करने वाले तथा अपने प्रियजनों के प्रेम परबश रहने वाले रस धाम श्रीराम तथा मकार का अर्थ है श्रीयुगल प्रभु श्रीसीतारामजीके सेवा सुख में निमग्न प्रेमरस भरित रसिक भक्त जीवात्मा। इसप्रकार 'श्रीं' बीज का सुन्दर अर्थ हुआ। दूसरा अर्थ इस प्रकार है-

श्-लक्ष्मी-तेज-कान्ति तथा प्रभा।

र्-धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य-प्रभ त्व-सत्ता।

ई-तुष्टी-विश्वमाता-शन्ति सन्तोष।

म्-दुःख विनाशक-अज्ञान-अश्रद्धा नष्ट करे।

इसका समष्ट्यर्थ इस प्रकार होता है-

तेज-कान्ति-प्रभा-लक्ष्मी-तुष्टि-पुष्टि-तेज सम्पत्ति ऐश्वर्य वैभव सभी की अधिष्ठात्री श्रीसीताजी हमारे दुःखों का विनाश करें।

मन्त्र में बीजाक्षर ही मुख्य होता है "मन्त्र सबीज जपत जनु जागे।" बीज सहित जप करने से मन्त्र जाग्रत होता है-

यथा नामी वाचकेन नाम्ना योऽभिमुखो भवेत्।
तथा बीजात्मको मन्त्रो मन्त्रिणोऽभिमुखो भवेत् ॥

श्रीरामतापनीयोपनिषद् २१।

जैसे नाम लेकर पुकारने से उसका नामी (जिसका वह नाम है) सम्मुख हो जाता है,। वह नाम लेने वाले को देखने लगता है, वैसेही बीजात्मक मन्त्र का जप करने से मन्त्रराज उस मन्त्र का जप करने वाले के अभिमुख हो जाते है। अतः बीज का यहां विशेष रूप से वर्णन किया जाता है। उपर्युक्त रीति से 'श्रीं' बीज का अर्थ वर्णन कर अब अन्य कई प्रकार से व्याकरण की रीति से निष्पन्न 'श्रीं' बीज का अर्थ आचार्यों ने कृपा करके हम लोगों के कल्याण के लिये समझाया है अब उसका विवेचन किया जाता है, उसको शान्त चित्त से मनन करना चाहिये-

महर्षि वाल्मीकि रामायण में लिखते हैं कि-

वसुधायाश्च वसुधां श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम्।

-वा. रा. युद्धकांड ११४।२२

श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा।

-वा. रा. अयो० ४४।१५

श्रीसीताजी वसुधा को भी धारण करने वाली है अर्थात् पृथिवी का भी आधार हैं तथा श्रियों की (अनन्तलक्ष्मियों की) भी श्री हैं पुनः कहते हैं श्रियों की (अतुल सम्पत्तियों) की भी सम्पत्ति हैं कीर्ति की भी कीर्ति हैं, तथा क्षमा की (सहनशीलता) की भी क्षमाशक्ति प्रदान करने वाली अद्वितीय महान् क्षमा हैं। इस प्रकार श्रीकिशोरीजू का वेदावतार श्रीरामायण ने 'श्रियों की भी परमा श्री' कहकर वर्णन किया है। इसी लिये आचार्य श्री अग्रस्वामीजी ने अपने 'रहस्यत्रय' ग्रन्थ में 'श्री शब्देन भगवती सीतोच्यते' ऐसा स्पष्टी करण किया है। अब श्री शब्द के अन्य अर्थों पर विचार करें—

श्रयन्तीं श्रियमाणाश्च श्रीणाति शृणवतीमपि ।
शृणाति निखिलान्दोषान् श्रीणाति च गुणैर्जगत् ।।
श्रीयते चाखिलैर्नित्यं श्रयते च परं पदम् ।
श्रीशब्दस्य भावार्थः सूरिभिरनुमीयते ।।

अभियुक्त सारावली ।

श्रयन्त्येतामिति

" श्रेयस्कामाः श्रयन्त्येतामिति श्रीः"

श्रेयस्कामी सभी सज्जन कल्याण कामना से जिनकी चरणों का आश्रय लेते हैं उसका नाम है 'श्री'। कहा भी है कि—

श्रेयो न ह्यरविन्दलोचनमनः कान्ता प्रसादादृते ।
संसृत्यक्षर वैष्णमत्राध्वसुनृणां सम्भाव्यते कर्हिचित् ।

'श्रीवरदवल्लभास्तोत्रम् ३।'

अरविन्दनयन भगवान् की प्रियकान्ता श्रीकिशोरीजू की कृपा विना संसार के पथिकजनों को श्रीवैष्णवमार्ग में चलने वालों को अन्य किसी भी उपाय से कदापि कल्याण नहीं हो सकता है।

सद्यस्ते सिद्धिमायान्ति ये सीता पद चिन्तकाः।
यस्याः सङ्कल्पमात्रेण जन्मस्थिति लयादिकाः!

पद्मपुराण, पाताल खण्ड ६६

जिनके सङ्कल्प मात्र से ही संसार की रचना पालन प्रलयादि कार्य होते हैं उन श्रीसीताजी के श्रीचरणारबिन्दों का जो प्रेम से चिन्तवन करते है वे अतिशीघ्र ही अभिष्ट सिद्धि रूपी फल प्राप्त करते हैं।

त्वदायत्ता इमे लोकाः श्रीसीतावल्लभा परा।
वन्दनीयासि देवानां सुभगे त्वां नमाम्यहम्॥

—शब्द कल्पद्रुम

हे श्रीसीताजी! अखिल ब्रह्माण्ड के सभी लोक आपके ही आधार पर हैं, आप ही सब की प्रिय करने वाली तथा सभी देवताओं की वन्दनीया हो ऐसी हे सुन्दर ऐश्वर्य वाली श्री सीताजी मैं आपको प्रणाम करता हूं।

२-श्रीयते संसार रक्षणादि कार्ये स्वयं श्री हरिणाऽपिया सा श्रीः।

जिसका ससारतन्त्र के सञ्चालन कार्य के लिये तथा आनन्दोल्लास की अभिवृद्धि के लिये श्रीहरि भी सदैव आश्रय लेते हैं उसका नाम है 'श्री'। कहा भी है–

"यामाश्रित्यजगल्लीलां करोति रघुनन्दनः।

जिनका आश्रय लेकर श्रीरघुनाथजी स्वयं जगत की लीला का विस्तार करते हैं, वह श्रीसीता जी हैं। ऐसा अध्यात्म रामायण में कहा है।

यत्पादपद्ममधुलम्पटतामुपेत्य

श्रीमान्हरिर्भवति माधवनामधेयः।

अम्बामनन्तमतिशक्तिबलामहं तां

श्रद्धानतेन शिरसा शरणं करोमि ॥

जिनके श्रीचरण कमलों का मधुर रस पीने के लिये लम्पट बनकर 'श्रीहरि' माधव नाम प्राप्त करते हैं उन अनन्त शक्ति तथा अपरिमेय बल सम्पन्ना अम्बाजू को श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर मैं उनकी शरणागति ग्रहण करता हूँ।

श्रीयते शरणागतजनै र्या सा श्रीः। सापराध चेतना श्रयणोपयोगित्वं वात्सल्यादिकं यस्याः सा 'श्रीः' सीता।

महान् अपराधी जीवों को वात्सल्य रस सागर होने से कृपाकर अवश्यमेव आश्रय प्रदान करती है इसलिए जिनका चरणाश्रय दीन-हीन सभी जीव करते हैं। उनका नाम है श्री-सीता।

यस्यास्ते महिमानमात्मनइव त्वद्वल्लभोऽपि प्रभु-

र्नालंमातुमियत्त या निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः।

तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्याम्यहंनिर्भयो-

लोकै केश्वरि लोकनाथदयिते दान्ते दयांते विदन् ॥

इस श्लोक में दूसरा तथा तीसरा दोनों प्रकार के अर्थों के भाव क्रमशः आ जाते हैं जैसे- प्रथम तो आपकी अपरम्पार

महिमा का पार आपके प्राण वल्लभ प्रियतम प्रभु अभी तक नहीं पा सके हैं इस लिये सदैव आपके सानुकूल रहने का ही उन्होंने नियम स्वीकार कर लिया है। तथा दूसरा भाव—

हे सर्व लोकैकेश्वरी ! हे लोकनाथ प्रभु की प्राण प्रियतमे ! ऐसी आपकी निर्भय होकर स्तुति इस लिये करता हूँ कि दीन हीनों पर आपकी निर्हेतुकी कृपा निरन्तर बरसाती ही रहती है, तो हम पर भी आपकी वह कृपा आप अवश्यमेव वरसावेंगीं हीं ऐसा दृढ विश्वास है।

४–श्रीयते ब्रह्मरुद्रेन्द्रादि देवमुनिगणैश्चराचरचेतनैश्च सेव्यते इति 'श्रीः'।

ब्रह्मा–रुद्र–इन्द्र–चन्द्र–देव–मुनि–ऋषि मानवादिक सभी सचराचर जड-चेतन जिनकी सेवा में परायण रहते हैं उसका नाम हैं 'श्रीं'।

ब्रह्मादिदेवगणरत्नकिरीटकोटि संसेवितांङ्घ्रिकमले कमलाधिवासे।
आनन्दकन्दलहरीशुभमन्दहासे अम्ब प्रसीद रघुनन्दनपट्ट कान्ते॥

—मार्कण्डेय संहिता-श्रीजानकी नवरत्नमाणिक्य

जिनके श्रीचरणारविन्दों में ब्रह्मादिक कोटि–कोटि देवगण अपने रत्नजटित बहुमूल्य किरीट मुकुटों को रखकर नित्य वन्दना करते हैं। ऐसी कमल वन बिहारिणी आनन्द कन्द सच्चिदानन्द प्रभु श्रीराम के अपने मधुर मन्द हास्य के द्वारा प्रेमानन्द की लहरें लहराने वाली श्रीरघुनन्दनजू की पटराणी हे श्री–स्वामिनी जू आप हम पर सदैव प्रसन्न रहें।

ब्रह्मेशादिसुरब्रजस्सदयितः त्वद्दास दासीगणाः
श्रीरित्येव च नामते भगवति ब्रूमःकथं त्वां वयम् ॥

अपनी अपनी प्राणप्रिय शक्तियों के सहित ब्रह्मादिक देवताओं के यूथ आपके दास-दासी गणों में सानन्द रहते हैं तथा 'श्री' ऐसा आपका सुप्रसिद्ध सुन्दर नाम है ऐसी हे भगवति ! हम आपका क्या गुणानुवाद कर सकते हैं ? तथापि-

यस्यैव सेवनविधौ हरिरीश्वरोऽत्रा-
ब्रह्मादयोऽपि मुनयो नहि भाग्यवन्तः ।
तत्त्वत् पदाब्जयुगल श्रयतोऽद्य देवि,
भाग्यस्य मे प्रतिभटो भुवि दुर्लभोऽस्ति ॥

जिनकी चरण सेवा के लिये तरसते हुए ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भी भाग्यवान् नहीं हो सके हैं, ऐसे आपके श्रीयुगल चरणारविन्दों का आश्रय प्राप्त करने वाला हे देवि ! आज मैं धन्य-धन्य हो रहा हूँ, आज मेरे जैसा दूसरा भाग्यवान् मिलना दुर्लभ ही है, यह आपकी कृपा है ।

५-श्रीयते सर्वैर्गुणैर्या सा 'श्रीः' (कर्मणिव्युत्पत्तिः)

संसार की तथा दिव्य जीवन की शोभा समृद्धि बढाने वाले समस्त सद्गुण जिनका आश्रय ग्रहण करते हैं उसका नाम है "श्री" ।

ब्रह्माद्याश्च सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ।

एधन्ते त्वत्पदच्छायामाश्रित्य कमलेश्वरि ॥

—कश्यपः

त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् ।

विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम् ॥

—इन्द्रः

हे कमलेश्वरी ! आपके श्रीचरण कमलों की छाया का आश्रय प्राप्त कर ब्रह्मादिक देवता-ऋषि-मुनि तपोधन महात्मा सभी उन्नति प्राप्त कर रहे है।

हे देवि ! आपके त्याग करने से यह समस्त त्रिभुवन स्वयं ही नष्ट प्रायः हो गया था जो आज आपकी कृपा-दृष्टि प्राप्त कर विकसित हो रहा है।

सः श्लाघ्यः स गुणीधन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।

सः शूरः स तु विक्रान्तो यं त्वं देवि ! निरीक्षसे ॥

सद्यः वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकलागुणाः ।

पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्यत्वं विष्णुवल्लभे ॥

वही प्रसंसनीय है, वही सर्वगुण सम्पन्न है, वही कुलीन है, वही सब बुद्धिमान है, वही शूरवीर है, वही प्रवल पराक्रमी है, देवि ! जिसको आप कृपा दृष्टि से देख लेतीं हैं वह धन्य हो जाता है। परन्तु हे श्रीविष्णुवल्लभे ! जिसकी आप उपेक्षा कर देतीं हैं हे जगन्माता ! उसके तो शील-सौन्दर्य-सौहार्दिक सम्पूर्ण गुण तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सभी सद्गुण श्रीजीके-चरणाश्रय से ही फलते फूलते हैं।

"श्रञ् सेवायाम्" सेवामार्गं प्रदर्शयति शिक्षयतीति श्रीः।

जो प्रभु की सेवा का सरल सरस मार्ग प्रदर्शन करे उसका नाम है 'श्री'। दूसरा अर्थ जिसकी सेवा सब कोई करे अथवा प्रीति प्रधान परवश होकर जिसकी सेवा करने को स्वयं प्रभु भी लालायित रहें, उसका नाम है 'श्री'।

जेहि विधि कृपासिन्धु सुख मानई
सोई कर 'श्री' सेवा विधि जानई ॥
सेवहिं लखन सीय रघुवीरहिं।
जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहि ॥

श्रीमद् वाल्मीकि रामायण में प्रभु ने श्रीमुख से श्रीलक्ष्मण जी को कहा है कि 'हम लोगों को वही करना चाहिये जिससे श्रीजनकनन्दनीजू को श्रीचित्रकूट निवास करने में अथवा वनविहार करने में कहीं किसी प्रकार के कष्ट की अनुभूति न हो। अतः-

सौमित्रे अग्रतोगच्छ सीतात्वामनुगच्छतु।
पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि त्वां सीतां परिपालयन् ॥

हे लक्ष्मण! तुम आगे चलो, तुम्हारे पीछे श्रीजानकी जी चलें और मैं तुम दोनों की रक्षा करते हुये सबके पीछे चलूं।

७-श्रृणाति हिनस्त्याश्रित शरणागत चेतनानां
जन्म-जन्मान्तरीयदोषान् नाशयतीति 'श्रीः'

'श्रृ हिंसायाम्' धातु से बने श्री शब्द का अर्थ होगा-जो शरणागत भक्तजनों को जन्म जन्मान्तरीय असह्य अपराधों से उत्पन्न महापातक रूपी दोषों को नष्ट करदें उसका नाम है; श्री

'श्री'। जैसे जयन्त के प्रत्यक्ष अक्षम्य अपराध को भी आपने क्षमा कराया—

प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वासीताथ वायसम् ।

त्राहि त्राहीतिभर्तारमुवाच दयया विभुम् ॥

तच्छिरं योजयामास पादयोस्तस्य जानकी

समुत्थाय करेणाथ कृपापीयूषसागरः ॥

इन्द्र पुत्र जयन्ते महान् अपराध किया था, प्रभु ने उसको प्राण दण्ड देने के ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया था, परन्तु जब अत्यन्त भयभीत होकर व्याकुल हृदय से प्रभु के आगे पड़ गया, श्रीजू का हृदय उसकी व्यथा को सहन न कर सका, आपने करुणा पर-बशहोकर उसका शिर अपने कर कमलों से उठाकर श्रीप्रभु के चरणों में रख दिया, तथा कृपा रस भरी वाणी से श्रीकिशोरीजू बोल उठीं, 'नाथ इसकी रक्षा करो रक्षा करो'-ऐसी दया से विह्वल होकर पुकारने लगीं, उसके महान सद्यः किये हुये अपराध को भी क्षमा कराकर उसके प्राण की रक्षा करवाया। यह है श्रीजू का शरणागतों के अपराधों को नष्टकर देने वाला प्रत्यक्ष उदाहरण है।

श्रयते हरिमिति 'श्रीः'। भगवदनन्याश्रय

त्वम् द्योतयतीति श्रीः (कर्तरिव्युत्पत्तिः।)

जो सदैव श्रीहरि का आश्रय लिये रहतीं हैं, जो स्वप्न में भी किसी अन्य का आश्रय नहीं लेतीं, उनका नाम है श्री'।

जनकसुता जगजननि जानकी ।

अतिशयप्रिय करुणानिधानकी ॥

ताके युगपद कमल मनावौं ।
जासु कृपा निर्मलमति पावौं ॥

गिरा अर्थ जलवीचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
वन्दौं सीतारामपद, जिनहि परमप्रिय खिन्न ॥

श्रीणाति कैङ्कर्यं परिपक्वफलप्रदंकरोतीति 'श्रीः' ।

श्रृञ्-पाके-धातु से बने श्रीशब्द का अर्थ होता है-जो अपनी अहैतुकी कृपा से याकिञ्चित् सेवा करने वाले जीवों के कङ्कर्य को भी परिपक्व परिपूर्ण फल प्रदान करके कृतार्थ करती है उनका नाम है 'श्री' ।

या रामस्य च योगतः प्रजपिता पूर्वं मुदा भाषते-
सीताराम इतीव यां च नियमैः रामेण संजाप्यते ॥
सीताराम पवित्रमन्त्र जपितुर्या भद्रदाने रता-
सा सीता जगदर्चिता भगवती सीतास्तु मे वन्दिता ॥

श्रीसीता सप्तशती

या ब्रह्माण्ड विकासिनी हरिहर ब्रह्मेशता स्थापिनी-
भक्तांन्तः करणस्य भाव निवहैर्या तत्क्रियासाधिका
भक्तानामतुलश्रिया खलु यया सत्कामना पूरिता-
सा सीता मम कामनां न कृपया किं पूरयेद्दर्शिता ॥

श्रीरामायण-रसायनम्

श्रीराम नाम का जप करते समय जिनका नाम प्रेमपूर्वक प्रथम बोला जाता है। नियम पूर्वक 'सीताराम' इसी प्रकार जिनके नाम का जप होता है अर्थात् 'राम-सीता' ऐसा जप कोई नहीं

करता है। जो 'श्रीसीताराम' इस पवित्र मन्त्र का जप करने वाले को निरन्तर भद्रदान कल्याण प्रदान करने में तत्पर रहती हैं। समस्त जगत् पूजनीया वह भगवती श्रीसीताजी मेरे द्वारा भी बन्दनीया होवें।

जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का विकास करने वाली हैं। जो हरि-हर ब्रह्मादिकों की ईश्वरता स्थापित करने वाली हैं। जो भक्तों के अन्तः करण का निर्मल प्रेम देखकर उसके छोटे-बड़े सभी कार्य परिपूर्ण कर देती हैं तथा जो भक्तों को दिव्यधाम की अतुल सम्पत्ति प्रदान करतीं हैं, वह परम दयालु श्रीसीताराम मेरे द्वारा गाये हुये गुणगणों का वर्णन सुन करके भी क्या मेरी कामनायें पूर्ण न करेंगी ? भावार्थ यह है कि अवश्यमेव परिपूर्ण करेंगी। इससे स्पष्ट होता है कि श्री जी भक्तों की तुच्छातितुच्छ सेवा का भी परिपूर्ण फल प्रदान करने में परम प्रसन्न रहती हैं।

चेतनकृतंकिञ्चिदपिप्रार्थनारूपं विज्ञापनं भगवन्तं श्रावयतीति 'श्रीः'

'श्रू-श्रवणे धातु से बने श्री शब्द का अर्थ होग जो शरणागतों की थोडी सी भी प्रेम पूर्वक की गई प्रार्थना भगवान् श्रीराम को विस्तार पूर्वक सुनाकर उसको भगवत्कृपा पात्र बना कर कृतार्थ कर देती हैं, उनका नाम है 'श्री।

पितेव त्वात्प्रेयान् जननि परिपूर्णागसिजने
हित स्रोतो वृत्या भवति च कदाचित् कालुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीतित्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसिनः॥

—श्रीगुण रत्नकोशः।

हे जननि ! परमकृपालु प्रभु हित चिन्तक पिता की भांति जीव के कृत कर्मों का यथोचित दण्ड देकर उसको सन्मार्ग पर लाने के लिये कभी-कभी जब कुपित हो जाते हैं तब हे मैया ! आप हमारा ही पक्ष लेकर उस समय प्रभु से कहती हैं कि आपके इस संसार में सर्वथा निर्दोष कौन है ? जब सब में कुछ न कुछ दोष है ही तब इसको दण्ड क्यों दिया जाता है, आपतो करुणा निधान हैं, आप को तो करुणा ही करनी चाहिये, ऐसे मधुर वचन सुनाकर जीवों के प्रति प्रभु कृपा मय बन जायं, ऐसा प्रयत्न करके हमारे प्रति प्रभु के हृदय में स्वजन सम्बन्धी प्रियभाव उत्पन्न कर देती है, इसलिये आपही हमारी सच्ची माता हैं ? सन्त तुलसीदास जी महाराज इसीलिये प्रार्थना करते हैं कि-

कबहुँक अम्ब अवसर पाई ।
मेरियौ सुधिध्यायबी कछु करुण कथा चलाई ॥
दीन सबविधि हीन छीन मलीन अघी अघाई ।
नामलै भरौं उदर तेरो दास दासी कहाई ॥
पूछि हैं सो हैं कवन: कहिवी नाम दशा जनाई ।
सुनत रामकृपालु कै मेरी बिगडि औ बनि जाई ॥
जानकी जग जननि जनकी, किये बचन सहाई ।
तरै 'तुलसीदास' भवतव, नाथ गुणगण गाई ।

विनय-पत्रिका ।

मात मैथिलि ! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधा स्त्विया-
रक्षन्त्यापवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठीकृता ।

काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्ति क्षमौ रक्षतः—
सानः सान्द्र महागसः सुखयतु क्षान्तिः तवाकस्मिकी ।

श्री गुणरत्नकोश ।

हे मां ! आपके तात्कालिक भयङ्कर अपराध करने वाली राक्षसियों को भी आपने श्रीहनुमान जी द्वारा दण्डित होते हुए कृपा करके बचा लिया आपकी इस महती करुणा ने तो श्रीराम जी की कृपा मयी सभा को भी लघु-छोटी सी बना दिया। क्योंकि श्रीराम ने तो जयन्त-सुग्रीव-विभीषण आदि को हे नाथ ! रक्षा करो-रक्षा करो !" ऐसी शरणागति की पुकार मचाने पर बचाया था, परन्तु आपने तो उन राक्षसियों को भयभींत देखकर स्वयं ही कृपाकर उबार लिया, हे माता ! वह आपकी अकस्मात् जीवों पर होने वाली कृपा हमारे जैसे महान् अपराधियों को सुखी करे यही बारंबार प्रार्थना है ।

"कबहुँ समय सुधि द्यायबी मेरी मातु जानकी"

११-श्रावयति विमुखान् हितं इति श्रीः 'अनेन हितोपदेष्टृत्व मुक्तम् ।

जो विमुखों को हितोपदेश सुनाकर प्रभु के सम्मुख करावे उसका नाम है श्री ।

विदितस्सहिधर्मात्मा शरणागतवत्सलः ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ।
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा नियर्तयितुमर्हसि ।।
एवं हि ते भवेत्स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे ।

अन्यथा त्वं प्रकुर्वाणः वधं प्राप्स्यसि रावण !!

—श्रीबाल्मीकि रामायण ;

रावण जैसे महान् अपराधी पर भी आपकी कितनी दया है आप उसको बड़ी कृपा करके समझाती है– श्रीराम बड़ेही धर्मात्मा हैं तथा शरणागत वत्सल हैं, यदि तुम जीना चाहते हो तो उनके साथ मित्रता कर लो । शरणागत वत्सल प्रभु को प्रसन्न करने के लिये तुम हमको उनके पास लौटा दो, ऐसा करने से ही तुम्हारा कल्याण होगा, यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुमको अवश्य ही प्राण दण्ड मिलेगा।" ऐसा उपदेश अपने अपराधी को भी देने वाली श्रीसीता जी ही हैं । साथ हो अपने स्वरूप का भी ज्ञान कराया है कि–

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानु पालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्ह तेजसा ॥

श्रीमद् वाल्मीकिरामायण ।

हे दशानन ! तुम यह न समझो मैं तुम्हारा कुछ नहीं कर सकती, हमारा तो ऐसा तेज है कि यदि चाहूँ तो सम्पूर्ण विश्वको क्षण भर में भस्म करदूं परन्तु मेरे स्वामी श्रीराम का ऐसा कोई संदेश नहीं मिला हैं । तथा पति वियुक्ता तपस्विनी होने से मैं ऐसा नहीं कर रही हूं । धन्य है मां आपकी दयालुता !

स्वयं वात्सल्य सागरत्वात् चेतनकृतार्तनादप्रार्थनां शृणोतीति "श्रीः" ।

जो वात्सल्य-कृपा दया-करुणा सौहार्दादिक दिव्यगुण गणों का

सागर होने से स्वयं ही अत्यन्त प्रेम से भक्तों की प्रार्थना आर्त पुकार श्रवण करती हैं, उसका नाम है 'श्री'।

सद्यः मोक्षपदं तेन प्राप्तं नास्त्यत्र संशयः।
येन सीता पदद्वन्दमश्रितं भव मोचनम् ॥ —पद्मपुराण

जिसने भवदुखहारी मङ्गलकारी श्रीसीताजी के युगल श्रीचरणारविन्दों का आश्रय लिया है, उसने शीघ्र ही कर्मबन्धनों को काट कर मोक्षपद प्राप्त कर लिया है इसमें कोई सन्देह नहीं है।" अर्थात् शरणागत को पुकार सुनते ही श्रीजी जीवको कृतार्थ कर देती है।

१३-"शृणाति दिव्यगुणैः शरणागतानां भक्त्यादि कल्याणप्रद गुणान् विस्तारयतीति श्रीः। इति कर्तरि व्युत्पत्या आश्रितगुणावर्धकं प्रोक्तम्।"

'शृ-विस्तारे' धातु से बने श्री शब्द का अर्थ है कि जो अपनी-कृपा-दया करुणादिक दिव्य गुणों से शरणागत जनों के भक्ति प्रेम-सेवा स्नेह- अनुराग-सौहार्द-सौशील्य उदारतादिक कल्याणप्रद गुणगणों का विस्तार कर देती हैं उसका नाम है 'श्री'।

मातर्मैथिलि यथैव मैथिलजनास्तेनाध्वना ते वयं-
त्वद्दास्यैक रसाभिमान सुभगैः भावैरिहामुत्र च।
जामाता दयितस्तवेति भवती सम्बन्ध दृष्टया हरिं-
पश्येम प्रतियाम याम च परिचारान् प्रहृष्येम च ॥
—श्रीगुणरत्नकोशः।

हे मां ! हे श्री मैथिली जू ! आप युगल प्रभुको जिस भाव से श्रीमिथिला निवासी भक्तों ने रिझाया है, वही सरस आपकी दास्यता के रसाभिमान से भरपूर भाव सदैव हमारे हृदय में भरा रहे । इस लोक में तथा परम धाम में हम श्रीमिथिला निवासियों की भावना के अनुरूप ही आपकी सेवा करें । तथा प्रियतम प्रभु को भी जामाता-प्राणनाथ-बहनोई आदि आपके दिव्य सम्बन्ध से ही प्रेम पूर्वक देखें तथा आठों पहरों की आष्टयाम सेवा परिचर्या करते हुए अत्यन्त प्रसन्न होते रहें । "इस में श्रीकिशोरी जी के सम्बन्ध से निरन्तर भाव वृद्धि की प्रार्थना की गई है इसी प्रकार "श्रीसुन्दरी-तन्त्र" में भी—

सकल कुशल दात्रीं भुक्ति मुक्ति प्रदात्रीं-
त्रिभुवन जनयित्रीं दुष्ट धी नाशयित्रीम् ।
जनक धरणी पुत्रीं दर्पि दर्प प्रहर्त्रीं-
हरिहर विधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्त भर्त्रीम् ॥

जो आश्रितों को सर्व विध मङ्गल कुशल प्रदान करने वाली हैं । जो पुण्य प्रद शुभ लौकिक सुख तथा परमपद मोक्ष सुख प्रदान करने वाली हैं । जो श्रीजनकजी तथा पृथिवी की पुत्री हैं, जो दुष्ट बुद्धि का निवारण करने वाली है, जो त्रिभुवन की जननी है, जो अहङ्कारियों के अहङ्कार को बिनाश करने वाली हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु शिव महान त्रिदेवों को भी विशिष्ट सत्ता प्रदान करने वाली हैं ऐसे अपने भक्तों का सर्व प्रकार से भरण पोषण करने वाली श्रीसीताजी को मैं प्रणाम करता हूं । इससे श्रीजू

का वैभव विस्तारक गुण प्रकट होता हैं।

श्रेयसे श्रयणीया श्रीः श्रेयः श्रीर्नित्ययोगिनी।

श्रीभट्टारक स्वामी

परम कल्याण की प्राप्ति के लिये जिसका आश्रय लेना ही चाहिये। ऐसी दिव्य परम श्रेयास्पदका नित्य संयोग प्रदान करने वाली श्रीजी ही हैं।

श्रीयते चाखिलैर्नित्यं श्रयते च परं पदम्।

—अहिबुध्न्यं संहिता।

जिसका अखिल सचराचर विश्वसहित विश्वंभर प्रभु भी आश्रय लेते हैं तथा जो स्वय जीवों को दिव्य अलौकिक सुख प्रदान करने के लिये अपने दिव्य सच्चिदानन्द परम धाम का आश्रय लेती हैं। अथवा परम पद वाच्य प्रभु का रसवर्धन के लिये आश्रय लेती हैं उसका नाम है 'श्री'

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम्।

मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम्॥

—श्रीमैथिली महोपनिषद

नित्यं सा पुरुषकार भूता श्रीरनपायनी।

अनुपायान्तरैर्विज्ञैरुच्यते तदुपायता॥

सर्वाधीशेश्वर प्राप्ति हेतुस्तत्राभिधीयते।

सीता पुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु॥

प्राप्यं मिथुनमेवेति श्रीमते पदतो मतम्।

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर-

नित्या-निरञ्जना-परम विशुद्धा-महाद्-ईश्वरी गुण गणों की भण्डार श्रीलक्ष्मी जी की भी महालक्ष्मी मां मैथिली जू के श्रीचरणों की मैं बन्दना करता हूं।

वह श्री जू नित्य ही जीवका भगवत्सम्बन्ध कराने के लिये तत्पर रहती हुई पुरुषकार का काम करती हैं। दूसरे उपायों में जिनका स्वल्पमात्र भी प्रीति नहीं है, उन अनन्यभक्तों की श्रीजू ही परमोपाय हैं। श्री शब्द से सर्वेश्वर श्रीसाकेताधीश्वर की प्राप्ति का परम श्रेष्ठ कारण श्रीसीता जी को हरि समझना चाहिये तथा श्रीमत् शब्द से "श्री-सहित दिनकरवंश भूषण" श्रीसीताराम युगल प्रभु की प्राप्ति ही अपना परमध्येय मानना चाहिये।" यह सिद्धान्त परमाचार्य श्रीमद्भगवद्रामानन्दाचार्य जी महाप्रभु ने कृपा कर हम लोगों के लिये प्रकट करके समझाया है।"

अब श्रीं बीज का समुच्चयार्थ जो १४ प्रकार से वर्णन कर आये हैं उसको स्पष्ट करते हैं।

"श्रीं बीज मन्त्र का समुच्चयार्थ"

जैसे बीज में सम्पूर्ण वृक्ष रहता है वैसे हर बीज मन्त्र में सम्पूर्ण मन्त्रार्थ सन्निहित रहता है, अतः जिज्ञासुओं को बीज मन्त्रार्थ का स्वरूप यहां दिखलाया जाता है-

१- जिसका चरणाश्रय लेकर सब सुखी होते।

२- जिसका संसार संरक्षणादि कार्यों में तथा दिव्य सच्चिदानन्द की अभिवृद्धि के लिये स्वयं श्रीहरि भी आश्रय ग्रहण करते है।

३- जो सापराध जीवों को भी अत्यन्त वात्सल्य मयी होने से

श्रीचरणाश्रय देकर सनाथ करती हैं।

४- जिसका ब्रह्म-रुद्र-इन्द्र-चन्द्रादि देव-ऋषि मुनि-सचरा चर प्राणी आश्रय लेकर सुखी होते हैं।

५- सभी दिव्य गुणगण जिसका आश्रय लेकर सुशोभित होते हैं।

६- जो प्रभु सेवा की प्रणाली सिखाने के लिये ही श्रीसम्प्रदाय की आचार्य बनी हैं। तथा जिसके चरणों की सब कोई सेवा करते हैं, इतना ही नहीं स्वयं प्रभु भी प्रीति प्रणयवश होकर जिसको सेवा प्राप्त करने के लिये लालायित रहते हैं।

७- जो शरणागत भक्तजनों के जन्म जन्मान्तरीय महापातकों का हनन करके भगवच्छरणागति की योग्यता प्रदान करती हैं।

८- जो भक्तों की भावना का विकास करने के लिये स्वयं श्रीहरि का आश्रय ग्रहण करती हैं।

९- जो प्रेमी जनों के द्वारा किये गये यत्किञ्चित् कैङ्कर्य सेवा को परिपूर्ण फलप्रद बनाकर जीवको कृतार्थ कर देतीं हैं।

१०-जो भक्तों द्वारा की गई तुच्छ प्रार्थना को भी अति विस्तार पूर्वक प्रभुको सुनाकर शरणागतों को भगवान् की असीम कृपा का पात्र वना देती हैं।

११-जो भगवद्विमुखी जीवों को भगवत्कृपा का लाभ प्राप्त करने के लिये दयापूर्ण हृदय से सदुपदेश सुनाती रहती हैं।

१२-जो स्वय भी वात्सल्यरस सागर होने से भक्तों के आर्तनाद को श्रवण कर शीघ्र ही उनके दुःखों को निवारण कर देती है।

१३-जो भक्तजनों को दिव्य गुणों का विस्तार करती हैं। उनका सुयश बढातीं हैं।

१४–परम कल्याण की कामना से जिसका आश्रय सबको लेना ही चाहिये । क्योंकि जो नित्य परम श्रेयास्पद प्रदान करतीं है तथा जो स्वयं लीला सुख वृद्धि के लिये दिव्यधाम परमपद का आश्रय लेती हैं।

इस प्रकार 'श्रीं' बीज के अनेक सुन्दर सुखद अर्थ होते हैं, इनमें से जो भी जब कभी स्मरण हो जाय परमानन्द प्रदान करने वाले हैं। तात्पर्य यह है कि मन्त्र जपते समय श्रीकिशोरीजू के अचिन्त्य कृपा वैभव का स्मरण करते हुए यह भावना करे कि मेरा परम सौभाग्य है कि ऐसी दिव्य महाशक्ति का महामन्त्र जप करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है। श्रीमन्त्र की अधिष्ठात्री भगवती सीता का अपरिमेय अचिन्त्य वैभव है उनके सम्बन्ध से श्रीराम का भी अप्रमेय बल है ऐसा शत्रुपक्ष के लोग भी रावण से कहते हैं—

"अप्रमेयं बलं तस्य यस्य सा जनकात्मजा"

श्रीवाल्मीकि रामायण

मन्त्र का बीज ही सम्पूर्ण वेद पुराण शास्त्रों का बीज हैं, इसको जितना ही गम्भीर भाव से बिचारिये उतना ही गम्भीर प्रतीत होता है, अतः संक्षेप में यही समझना चाहिये कि—

जो सबको आश्रय देतीं है। जिसका स्वयं श्री हरि भी आश्रय लेते हैं। जो अपने परम दिव्य धाम का आश्रय लेकर प्रसन्न होती हैं। जो शरणागतों की प्रार्थना स्वयं सुनती है, तथा प्रभु को सुनाती है । जो अपने दिव्य गुण गणों का विस्तार

करती है तथा भक्तों के हृदय में भी भगवदीय गुणों की अभिवृद्धि करती रहती हैं। जो सभी दोष दुर्गुणों का नितान्त संहार करती हैं तथा दिव्य करुणा-दया-वात्सल्यादिक गुणों से जगत का संरक्षण भी करतीं हैं। ऐसी दिव्य महाशक्ति श्रीसीताजी ही श्रीपदवाच्या हैं। इस प्रकार से 'श्रीं' वीज का रहस्य समझाकर अब 'सीता' शब्द का विवेचन किया जाता है-

मन्त्र के वीज का विकसित स्वरूप ही इष्ट देवता का नाम होता हैं, उसके साथ सम्प्रदानार्थक चतुर्थी विभक्ति लगायी जाती है, अन्त में 'नमः' अथवा 'स्वाहा' पद आता है, यही मन्त्र का स्वरूप है। आइये, अब 'सीता' पद के दिव्य भावों का विचार करें-

अर्वाची सुभगे भवसीते ! बन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफला असति ॥

ऋग्वेद ४।५७.६, अथर्व, ३।१७।८। तैतरिय आरण्यक ७।४ ३।६-६।१६।२-

"वेद भगवान् वर्णन करते हैं कि हे सीते ! आप परम सुभग ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, हम सबकी परम कल्याण प्रदान करने वाली हैं, हम सब लोगों का जैसे परम कल्याण हो वैसा करने के लिये आप सदैव हम पर सानुकूल रहें। आप भक्तों को परमैश्वर्य प्रदान करने वाली दीप्तिमान् करने वाली तथा सुफल मनोरथ करने वाली हैं, हम सब आपकी वन्दना करते हैं।" यह तो वेद मन्त्रों द्वारा ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री 'श्रीसीताजी' के स्वरूपको

हृदयङ्गम करने के लिये संक्षिप्त अर्थ है, परन्तु संस्कृत व्याकरण की रीति से भी 'सीता' शब्द के अनेक भावार्थ महापुरुषों ने प्रकट किये है, अब आइये ! उन भावों को भी समझने का प्रयत्न करें । 'सीता' शब्द में चार अक्षर हैं-

१-'स' सत्य-अमृत-सच्चिदानन्दमयी श्रीसीता ।
२-ई-सर्वेश्वरी पराशक्ति, व्यापक स्वरूपा
३-त्-परमतत्त्वमयी-तेजोमयी-तपः स्वरूपिणी ।
४-आ-आचार्यस्वरूपा जीवोद्धार परायणा

आनन्द प्रदायिनी करुणाप्रेम मयी । यह श्रीसीतोपनिषद् के भाव हैं—

'सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयी भवेत् ।
विष्णुः प्रपञ्च बीजं च माया ईकार उच्यते ॥
सकार सत्यममृतं प्राप्ति सोमश्च कीर्त्यते ।
तकारस्तार लक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतम् ॥

-श्रीसीतोपनिषद् ।

१-"षिघू-गत्यां" धातु से बने 'सीता' शब्द चार अर्थों में प्रयुक्त होता है । गति गमने -१ गति ज्ञाने -२ गति प्राप्तौ -३ गति-मोक्षे -४ वे भाव इस प्रकार हैं—

१- जो भगवन्मार्ग में जीवों को गमन करावे ।
२- जो भगवत्स्वरूप का जीवों को ज्ञान करावे ।
३- जो सर्वेश्वर प्रभु के नित्यनिजधाम की तथा सेवा कैङ्कर्य की नित्य प्राप्ति करावे ।

४-जो भवबन्धन से जीवों को मुक्त कर मोक्ष प्रदान करे।

"सेधन्ति भगवत्साक्षात्कार ज्ञानं मोक्षञ्च जनाः प्राप्नुवन्ति यया सा 'सीता'।"

२- 'षिञ्-बन्धने'' धातु से बने 'सीता' शब्द का अर्थ होता,है-
"सिनोति वशं करोति स्वदिव्य लीलया भगवन्तं या सा 'सीता'! अथवा

:"सीयते निज दिव्य वैभवेन स्वामिनं बध्नाते या सा 'सीता'

जो अपनी दिव्यलीलाओं से तथा अपने दिव्य गुण गणों से अपने स्वामी भगवान श्रीराम को वशीभूत करले, प्रेमवश में बाँध ले उसका नाम है 'सीता'। श्रीशुकदेव जी कहते है।

प्रेमानुवृत्याशीलेन प्रश्रयावनता सती,
ह्रिया-धिया च भावज्ञा भर्तुः सीता हरन्मनः।

श्रीमद्भागवत; २-१०-५६

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजन लक्षणाम्।
राघवोऽर्हति वैदेही तञ्चेयमसितेक्षणा

—श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड

उत्कृष्ट प्रेमको भावना से, सदा सानुकुल प्रवृत्ति से अपने उदात्तशील स्वभाव से, विनय विवेक से बुद्धि मानी से, लज्जा लङ्कृत सौजन्य से अपने पति के हृदय की भावना को भली भांति जानने वाली श्रीसीता जी ने श्रीरामजी के मनको हरण कर लिया है।

"श्रीराम के परम कल्याण मय गुणशील स्वभाव अबस्था आन्तरिक भावना तथा उत्कृष्ट आदर्श को सुशोभित करे ऐसी श्रीकिशोरीजू के योग्यतो श्रीराम जी ही हैं तथा श्रीराम के योग्य तो कमल के समान विशाल नयन वाली श्री विदेहकुमारी श्रीसीता जी ही हैं" इसी प्रेम के बशीभूत होकर प्रेमार्णव प्रभु भी—

अपूर्व नाना रस भाव निर्भर प्रबुद्धया मुग्धविदग्धलीलया ।
क्षणाणुवत् क्षिप्त परादिकालया प्रहर्षयंतं महिषीं महाभुजम् ।

श्री आलबन्दार स्तोत्रम्

नाना प्रकार के अपूर्ब रसभाव भरित श्रोजू की मन मुग्ध करने वाली मञ्जुल मनोहर लीलाओं में प्रभु ऐसे निमग्न रहते हैं कि अनन्तानन्त काल चले जाने पर भी मानों अभी तो क्षण मात्र ही गया है ऐसे रस विभोर होकर अपनी पट्टराणी को वे महाभुज रिझाते ही रहते है। ऐसी अपूर्व रस भरी प्रियतम बश करणी श्रीसीता जी है। 'विधि हरिहर जाको जपत, त्यागि सकल धन धाम। सो रघुबर मनमहँ सदा, सुमिरत सिया को नाम।"

चिहुँकि लकत आनन्द छकत, वकसत बहुधन धाम।
जगमङ्गल मङ्गल सजत, सुनि सियनाम ललाम ॥

शृङ्गार प्रदीप।

जनकलली के पद कमल, जब लगि हिय नहि वास।
राम भ्रमर आवत नहिं, तब लगि ताके पास ॥
'सी' कहते सुख ऊपजे, 'ता' कहते तम नाश :
तुलसी सीता जो कहे, राम न छांडे पास ॥

जानकी वदनाम्भोज मकरन्द मधुव्रतः ।
पूर्णकामौ घनश्यामो रामोविजयतेतराम् ।

३–सीयन्ते बध्यन्ते करुणाया भक्त्यर्थजनाः यया सा 'सीता'।

जो वात्सल्यादिक कल्याणमयदिव्यगुणगणों से आश्रितजनों को सदैव प्रेमपरवश बनाये रखें उसका नाम है 'सीता' तद्यथा–

साम्राज्यमर्पयतिभक्ति लवेप्युदग्रं–
प्रेम्णा प्रदर्शयति पादसरोज शोभाम् ।
विघ्नान्निवारयति यः भजतांसमन्तात् ।
सा जानकी विजयते कुलदैवतं नः ॥

–श्रीहर्य्याचार्यं स्वामिनः

जो भक्तिपूर्वक लवलेश मात्र आराधना करने पर भी साम्राज्य लक्ष्मी समर्पण करतीं हैं। जो प्रेमपूर्वक निर्मल भक्ति करने वालों को अपने दिव्य मङ्गलमय पादारविन्दों की शोभा का परम दुर्लभ दर्शन कराकर सनाथ करतीं हैं। जो भजन करने वालों के सम्पूर्ण विघ्नों को समूल नष्ट कर देती हैं, वह श्री जनकराज नन्दिनीजू जो हमारी कुलदेवता है, हमारे कुल का परम पराक्रम है सदैव विजय को प्राप्त करें।

४–'षिधु-संराद्धौ' सम्यक् प्रकारेण मोक्षपद माराद्धान्तं सिध्यति यया सा 'सीता'।

जो अपनी कृपा से शीघ्र ही मोक्ष पद वाचक रहस्य की प्राप्ति कराकर निष्ठा सम्पन्न भक्तजनों को 'कैङ्कर्यं लक्षण विलक्षण मोक्ष भाजः' बना देतीं हैं उसका नाम है 'सीता'।

कल्पवल्लीवदीनानां सर्वदारिद्र्यनाशिनी ।
शान्तिदा भूमिजा शास्त्रा श्रीसीताशरणंमम ॥

-श्रीवशिष्ठ संहिता।

इयं देवी जनकजा महाविद्या महामते ।
यस्याः स्मरणमात्रेण मुक्ता यास्यन्ति सद्गतिम् ॥

-पद्मपुराण, पाताल खण्ड ८- ६९-२०)

जो कल्पलता के समान दीनों के सर्व दारिद्र्य का विनाश करती है वह शांति सुख प्रदान करने वाली सभी पर शासन करने वाली श्रीसीताजी ही मेरा शरण हैं।

यह श्रीजनक राजकुमारी महाविद्या हैं हे महामते ! जिसका स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य भव वन्धन से मुक्त होकर परम सद्गति प्राप्त कर लेता है, वहीं श्रीसीतादेबी मेरी आराध्य देवता हैं।

सद्यः मोक्षपदं तेन प्राप्तंनास्त्यत्र संशयः ।
येन सीता पदद्वन्द्व माश्रितं भवमोचनम् ॥

उसने शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त कर लिया है, इसमें किञ्चन्मात्र भी संशय नहीं है, जिसने भवपाश विमोचन श्रीसीताजी के श्रीयुगल चरणारविन्दों का आश्रय किया है वह धन्य हो जाता है।

५-षिधु-शास्त्रमाङ्गल्ये—

(क)-'सर्वाश्रितान् निजभक्तान् शास्त्रनिर्दिष्ट कैङ्कर्यानुशासनं प्रदर्शयति आज्ञापयतीति 'सीता' ।

(ख)-शरणागत भक्तानां सदैव माङ्गल्यप्रद मङ्गलानुशासनं सिध्यति करोतीति 'सीता' ।

जो अपने श्रीचरणाश्रित भक्तजनों का शास्त्र निर्दिष्ट भगवत्प्रियङ्कर सेवा कैङ्कर्य का उपदेश देकर सन्मार्ग पर चलने की आज्ञा प्रदान करे उसका नाम है 'सीता' । तद्यथा-

यदि रामस्यदूतस्त्वंमागतो भद्रम स्तु ते ।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ ! प्रियारामकथा हि मे ॥
गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर !
चित्तं हरसि मे सौम्यं नदीकूलं यथा रयः ॥

-श्रीमद्वाल्मीकीय-सुन्दरकाण्ड ।

'हे हरिश्रेष्ठ ! यदि तुम राम के दूत होकर आये हो तो तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमसे श्रीराम की प्रिय कथा पूछती हूं । तुम मेरे परमप्रिय श्रीराम के गुणानुवाद गाओ, तुम्हारे मुख से उनके गुणों को सुनते ही जैसे नदीके किनारा को जलधारा वेग से अपनी ओर खींच लेती है वैसे ही मेरा सौम्यमन आकर्षित हो जाता हैं। इस प्रसङ्ग में आप श्री हनुमानजी का (श्रीरामभक्त का) मङ्गलानुशासन भी करतीं हैं तथा भगवद्गुणों का गान श्रवण कथन ही भक्त का दिव्य कर्तव्य हैं इस शास्त्रीय सिद्धान्त का उपदेश भी करतीं है। इसी लिये कहा है कि-

दुष्कर्म धर्ममपसार्य दधाति धर्मं-
या चात्र वत्सलतया स्वजने सदा सा ।
माता समस्त जगतां च रमादि हेतुः-
सर्वेश्वरी जनकजा शरणं ममास्तु ॥

-श्रीजनकजाशरणाष्टकम् ।

दुष्टता बढ़ाने वाले अधर्मों का निवारण कर जो नित्य सद्धर्म परायण बनाती हैं, वात्सल्य भरी होने से स्वजनों का सदैव हित करती हैं, जो जगत् के सभी जीवों की माता हैं ऐसी सर्वेश्वरी श्रीजानकीजी मेरा एकमात्र आश्रय हों।' श्रीहनुमान जी जब राक्षसियों को दण्ड देना चाहते थे उस समय में आपका वात्सल्य 'रिपुणामपिवत्सला' उक्ति चरितार्थ करता है।

एवमुक्ता हनूमता वैदेही जनकात्मजा।
उवाच धर्म सहितं हनूमन्तं यशास्विनी॥
राज्य संश्रयवश्यानां कुर्वतीना पराज्ञया।
विधेयानां च दासीनाँ कः कुप्येद् वानरोत्तम॥
पापानां वाऽशुभानां वावधार्हाणांप्लवङ्गम।
कार्यं कारुण्यमार्य्येण न कश्चिन्नापराध्यति

श्रीहनुमानजी ने प्रत्यक्ष में अनन्त कष्ट देने वाली राक्षसियों को दण्ड प्रदान करने की जब आज्ञा माँगी तो-आप करुणामयी सब भूल गयीं, जिस कष्टप्रद वातावरण से हनुमानजी इतने क्रुद्ध हो गये थे, उन अपने पर कष्टों का पहाड़ पटकने वाली राक्षसियों पर भी आप दयामयी हो गयी, महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि-'इस प्रकार श्रीहनुमानजी का वचन सुनकर विदेह नन्दिनी श्रीजानकीजी महायशस्विनी धर्म भावना पूर्ण श्रीहनुमानजी से ऐसा वचन बोलीं कि-जो स्वयं राज्यशासन के आधीन होकर दूसरे की आज्ञा मानकर परवश दासियों पर हेवानरोत्तम ! कौन

कुपित हो सकता है ? हे कूदने वाले कपियों में परम-श्रेष्ठ हनुमान ! आर्य पुरुषों को तो पापियों पर; आमङ्गलिक जीवोंप तथावधकरने योग्य अपराधियों पर भी करुणा ही करनी चाहिये, बस्तुतः कोई किसी का अपराध नहीं करता है, सब अपनाही भोग भोगते हैं।'

'इन वचनों द्वारा भागवतों के करुणामय धर्म का शास्त्रीय उपदेश देकर आपने श्रीहनुमानजी के हृदय में भी राक्षसियों के प्रति दया प्रधान क्षमा भाव उत्पन्न कर दिया, तथा उनको भगवत्प्रिय कृपापूर्ण व्यवहार करने की आज्ञा प्रदान की' श्रीकिशोरीजी के श्रीचरणों की वन्दना करते हुये श्रीकागभुशुण्डी जी कहते हैं कि-

यः सिद्धैर्मुनिपुङ्गवैः सुरगणैः संसेवितः पूजितः
ब्रह्मेशानपुरन्दरादिभिरलं श्रीखण्ड संचर्चितः।
भक्तानां भवबन्धताप हरणस्तीर्थास्पदः शोभनः-
सः सीतापद पङ्कजो ददतु मे श्रेयांसि सन्तानकः।

\- श्रीभुशुण्डीरामायण।

'जो सिद्ध मुनीन्द्रों द्वारा तथा देव देवेन्द्रों द्वारा पूजित एवं सुसेवित हैं। जो ब्रह्मा-शिव-इन्द्रादिक देवताओं द्वारा श्रीखण्ड चन्दन की अर्चना से सम्यक् प्रकारेण समर्चित है। जो भक्तों के त्रिविध-तापों का निवारण करने वाले हैं जो सभी तीर्थों के निवास स्थान हैं। जो परमशोभा से सम्पन्न हैं, वे श्रीसीताजी का चरणारविन्द हमारे परम कल्याण परम श्रेय स्वरूप परम्परा की सदैव अभि-वृद्धि करते रहें।'

६-'षोन्तः कर्मणि'

स्यति सर्वेषां स्वभक्त प्रतिपक्षि दुष्टस्वभावानामन्तं करोति सा 'सीता'। अथवा—

स्यति भगवदिच्छा मात्रेणानन्तब्रह्माण्डानामन्तं करोति सा 'सीता'।

षोन्तः- कर्मणि धातु से बने 'सीता' शब्द का अर्थ है कि- 'जो सभी जनों के तथा भक्तों के प्रतिपक्षी बनकर दुःख प्रदान करने वाले हैं उन दुष्टात्माओं का अन्त करती हैं उनका नाम है 'सीता' अथवा-प्रभु की इच्छा मात्र से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का अन्त कर देती है, उसका नाम है 'सीता'

श्री जी परम करुणामयी होने से संहार लीला तो स्वय नहीं करती हैं परन्तु उनकी उपेक्षा ही संसार के संहार का कारण बन जाती है इसीलिये—

उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

जो भक्तिप्रेम को उत्पन्न करने वाली हैं जो अज्ञान अश्रद्धादिक दोषों का संहार करने वाली हैं तथा श्रद्धा-अनुराग- करुणा-दयादिक सद्गुणों का संरक्षण करने वाली हैं, आश्रितों के अन्त-र्बाह्य क्लेशों को हरण करने वाली हैं ऐसी सर्व प्रकार से कल्याण करने वाली श्रीरामवल्लभाजू को मैं प्रणाम करता हूं। सांसारिक प्रलय लीला भी त्रिविधताप विदग्धों को चिरकालीन शान्ति प्रदान करने के लिये ही होती है इसलिये श्रीजीको दिव्य

स्वरूप 'सर्वश्रेयस्करी' ही अर्थ सङ्गत है।

ईषत्त्वत्करुणा निरीक्षण सुधा संधुक्षणाद्रक्ष्यते
नष्टं प्राक् तदलाभतस्त्रिभुवनं संप्रत्यनन्तोदयम्।
श्रेयो न ह्यरविन्दलोचनमनः कान्ताप्रसादादृते-
संसृत्यक्षर वैष्णवाध्वसुनृणां सम्भाव्यते कर्हिचित्॥

श्रीवरद वल्लभा स्त्रोत्रम्।

अनन्त स्वामी श्री यामुनाचार्य जी महाराज प्रार्थना करते है कि हे श्री किशोरी जू! आपकी सुधा रस भरी कृपाकटाक्ष प्राप्त करके इस समय यह विश्व भली भांति सुरक्षित हो रहा है, जो इसके कुछ ही समय पहले आपकी कृपा कटाक्ष के अभाव में सारा त्रिभुवन ब्रह्माण्ड प्रलय काल में सर्वथा नष्ट हो गया था, वही अब आपकी कृपा से अनन्त प्रकार से अभ्युदय को प्राप्त हो रहा है। राजीवलोचन श्रीरामजी की प्राणवल्लभा श्रीसीता जो की कृपा के विना संसार पथ में भटकने वाले जीवों का किसी प्रकार कल्याण नहीं हो सकता है। वह श्रीवैष्णवाचार्यों का सुदृढ सिद्धान्त है।

७-षु-प्रसवैश्वर्य्ययोः-

१- अनन्तानन्त ब्रह्माण्डान् प्रस्तूयते या सा 'सीता'।
२- अनन्तैश्वर्यं सम्पन्ना या सा 'सीता'।
३- अनन्तैश्वर्यं भक्तप्रपन्नान् ददाति या सा 'सीता'।
१-जो अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करती हैं। उसका नाम है 'सीता।

जानक्यांशाद्धिसम्भूताऽनेक ब्रह्माण्ड गोलकाः ।
सा मूलप्रकृति ज्ञेया महामाया स्वरूपिणी ॥

महारामायण ।

मां विद्धि मूल प्रकृति सर्ग स्थित्यन्त कारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥

–अध्यातमरामायण, १ । १४

त्वयैवोत्पादितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् !
त्वमेवासि महामाया मुनीनामपि मोहिनी ॥

–शव्द कल्पद्रुम ।

"श्रीजानकी जी की अंश कला से ही अनन्त ब्रह्माण्ड गोलक उत्पन्न होते हैं। वही मूल प्रकृति हैं तथा वही महामाया स्वरूपिणी हैं" "इस संसार की उत्पत्ति-पालन-प्रलयादिक करने वाली मुझको ही मूलप्रकृति जानो, मैं परम पुरुष प्रभु की सन्निधि मात्र से ही आलस्य प्रमाद रहित इस विश्व का सजंन करती हूँ। हे मुनियों के मन को भी मोहित करने वाली श्रीसीताजी ! आपने ही यह आश्चर्यमय सचरा-चर विश्व उत्पन्न किया है। आप की महा माया हैं।

२– जो अनन्त ऐश्वर्य्य सम्पन्न हो उसका नाम है 'सीता'। अद्भुत रामायण में कहा है कि—

एवं ज्ञेया परानित्या सीता ब्रह्म सुविग्रहा ।
सर्वशक्ति मयी धात्री सर्वशक्ति परा तथा ॥

इस प्रकार श्रीसीता जी को ही परात्परामहाशक्ति जानों

वह सर्वशक्तिमयी महान् जगद्धात्री हैं। तथा परब्रह्म की द्वितीय सुन्दर विग्रह हैं तथा सर्व शक्तियों से परे हैं।

आदि शक्ति छबिनिधि जग मूला ।
वाम भाग शोभित अनुकूला ॥
उपजहि जासु अंश गुण खानी ।
अगणित उमा रमा ब्रह्माणी ॥
लोकप होहि विलोकत तोरे ।
तोहि सेवत सब सिधि कर जोरे ॥

ब्रह्मेशादि सुर ब्रजस्सदयितस्त्वद् दास दासी गणः
श्रीरित्येवचनाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम् ॥
—चतुः श्लोकी ।

'हे श्रीजू ! ब्रह्मा-शङ्करादिक देव समूह अपनी शक्तियों समेत आपके श्रीचरणों की सेवा करने के लिये दास-दासी बने रहते है तथा आप का शुभ नाम ही 'श्रीजू' है तब हे भगवती आपकी अनन्त महिमा का हम लोग क्या वर्णन कर सकते हैं ?

३-जो मन्त्रों को अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करती हैं उसका नाम है 'सीता'।

मानस्त्वदङ्घ्रि कमल द्वयगन्धमत्त-
योगीन्द्र सिद्ध मुनिवृन्द सुरा सुराद्याः !
सिद्धिं गतास्त्रिभुवनैक महाविभूते-
तस्माद् भजेहमनिशं रघुवीर कान्ते ॥
श्रीजानकी नवरत्न माणिक्य ।

हे मैया ! आपके श्रीचरण कमलों की मधुर सुगन्ध का आस्वादन कर महान् योगीन्द्र सिद्ध-मुनिवृन्द तथा देव दैत्य-दानव-राक्षस मानव पशुपक्षी सभी परमसिद्धि को प्राप्त हुये हैं, आप ऐसी त्रिभुवन की महान् विभूति हैं। श्रीरामकान्ते! मैं तो यह जानकर अब निरन्तर आपका ही भजन स्मरण करता हूं

अरुणारविन्दचरणां समुल्लसत्
तरुणार्क बिम्बकमनीय कुण्डलाम्
मिथिलाधिपस्य तनयामुपास्महे-
करुणां विदेह विमलोत्पलेक्षणाम् ॥

ब्रह्माण्डपुराण श्रीजानकी कवच।

अनिद्रः सततं राम सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ॥

-वाल्मीकीय रामायण।

सोते में जगते में तथा सोकर उठते समय श्रीरामजी सतत काल सीते ऐसी मधुर वाणी बोलते हैं।

श्रीरामनाम द्वै अक्षर हृदय जपै जो कोय।
दुर्लभ दीरघ वरिउठे-प्रीति प्रतीति जो होय।

इस प्रकार व्याकरण की रीति से श्रीसीता नाम के अनेक अर्थ होते हैं। 'श्री' शब्द की व्युत्पत्ति मेंजो अर्थ आये हैं वे 'सीता' शब्द में भी घटित होते हैं तथा 'सीता' शब्द का व्युत्पति में जो अर्थ आये हैं, वे 'श्री' शब्द में घटित होते हैं। क्योंकि दोनों नाम एक ही परमतत्त्व श्रीकिशोरीजू के हैं। श्रीसीतातत्त्व का

रहस्य समझाते हुये वेद के उपनिषद् भाग कहते हैं कि–

'उद्भव स्थिति संहार कारिणीं सर्व देहिनाम् ।
सीताभगवती ज्ञेया मूल प्रकृति संज्ञिता ॥
प्रणवत्त्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्म वादिनः ।
रामसान्निध्यवश ज्जगदानन्ददायिनी ॥

–श्रीरामतापनीयोपनिषद् ३।४

सभी देह धारियों को सर्जन-संरक्षण तथा संहारादिक लीलाओं द्वारा परमानन्द प्रदान करने वाली श्रीसीता स्वयं भगवती हैं, वही मूल प्रकृति है, अर्थात् विकृति रहित दिव्य स्वरूपिणी है, वही सीताजी वेदों के प्राण स्वरूप प्रणव का प्रत्यक्ष दिव्य स्वरूप होने से ब्रह्मतत्त्वज्ञ; उनको आद्या प्रकृति भी कहते हैं। श्रीरामजी का नित्य निरन्तर अखण्ड सानिध्य रहने से वे सर्वश जगत् को परमानन्द प्रदान करने वाली हैं।

इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तिस्त्रयं यद्भाव साधनम् ।
तद्ब्रह्म सत्ता सामान्यं सीता तत्त्वमुपास्महे ॥

जो इच्छा (वेदोक्त कर्म) ज्ञान (भगवद्रस्य का साक्षात्कार) तथा क्रिया (भगवत्कैङ्कर्यं निष्ठा) ये तीनों जिनकी भावनाकी सिद्धि के साधन है, उस ब्रह्मसत्ता के समान ब्रह्म का अद्वितीय स्वरूप श्रीसीता तत्त्व की हम उपासना करते हैं।'

जानकी प्रकृति सृष्टेरादिभूता महागुणाः ।
तपः सिद्धिः स्वर्गसिद्धिर्भूति मूर्तिमतीसती ॥
यामाधाय हृदि ब्रह्मन् ! योगिनस्तत्त्व दर्शिनः ।

विघट्टयन्ति हृद् ग्रन्थि भवन्ति सुखमूर्तिकाः ॥

—अद्भुत रामायण ११-७

'श्रीजानकीजी सृष्टि की आदि कारण भूता हैं। महान् गुणवती हैं। तपः सिद्धि तथा स्वर्गसिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य की प्रत्यक्ष प्रतिमा हैं। महान् सती हैं। तत्त्व द्रष्टा योगिजन जिनके श्रीचरणों को हृदय में धारण कर हृदय की अविद्याजनित गांठों का भेदन करते हैं। तथा सच्चिदानन्द परमसुख पाकर कृतार्थ हो जाते हैं।' इस प्रकार श्रीसीताजी का दिव्य 'सर्वश्रेयस्करी' स्वरूप है। परम आह्लादिनी हैं। क्योंकि 'श्रीराम वल्लभा' हैं लीला विभूति में अवतार काल में भी—

अयोनिजा-पद्मकरा-बालार्कशत सन्निभा ।
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेन सुन्दरी ॥

—शब्दकल्पद्रुम।

श्रीजानकीजी अयोनिजा हैं, स्वयं व्यक्त है सैकड़ों सूर्यों की ज्योति के समान देदीप्यमान हैं, हलके अग्रभाग से उत्पन्न अपने दिव्य 'सीता' नाम को सुरक्षित रखने वाली है वह बालभाव से स्वरूपतः बड़ी सुन्दर लगती है। अतएव व्याख्याकारों ने उनके लिये कहा है कि—

'सीता नभः सरिति लाङ्गलपद्धतौ च ।
सीता दशाननरिपोः सहधर्मणी च ॥

—धरणिकोशः।

'सीता' आकाश गङ्गा का नाम है, 'सीता' हलके अग्रभाग

की नोंक का नाम है तथा 'सीता' दशमुख रावण के शत्रु श्रीराम की सहधर्मिणी का नाम है।

'अनेन अयोनिजोक्तेर्दिव्यसाकेत निवासकालिक सौन्दर्य न्यूनता नोक्ता'।

इस प्रकार व्याख्याकारों ने आपको आयोनिजा कहकर अवतार लेने वाली तथा दिव्य साकेतधाम में निवासकाल की सुन्दरता में किञ्चिन्मात्र भी न्यूनता का स्पर्श आपको नहीं हुआ है यह बात स्पष्ट की है। इस वाक्य में अपने को एक अंश से आकाश गङ्गा बना कर देवलोक को पावन करने वाली 'सीता'। हल के अग्र-भाग से अयोनिजा रूप में प्रकट होने वाली सीता तथा दशमुख रावण के रिपु राम की प्राणप्रिया श्रीराम की वल्लभा सीता का प्रभाव व्यक्त किया गया है। विशेष समझने के लिये परिशिष्ट में सीता शब्द के सौ अर्थ पढने को कृपा करें।

❀ 'सीतायै' पद का अर्थ ❀

मन्त्रराज के इस सीता शब्द के साथ में चतुर्थी विभक्ति का ङे प्रत्यय लगा हुआ है जिससे सीतायै पद बना है। इस चतुर्थी विभक्ति का अर्थ सम्प्रदान तथा समर्पण होता है। अर्थात् शरणागत भक्त श्रीवैष्णव जो कुछ करे सब श्रीसीताजी के लिये ही करे। भक्त का तन-मन-धन-जीवन-सर्वस्व-जप-तप-ध्यान धारणादिक साधन उन्हीं जगदीश्वरी के श्रीचरणों में निछावर रहे। उसके आचार-विचार-व्यवहार सब उन्हीं श्रीजू की प्रसन्नता के लिये ही है।

"भगवत्यम्बे श्रीसीते ! तवकैङ्कर्य-कार्थंकारितं-कृतं-करोमि करिष्यामि च तत्सर्वं 'श्रीं' सीतायै स्वाहा" इति नित्यानु-सन्धानम् ।" हे भगवती ! हे अम्ब ! हे श्रीसीते ! आपका कैङ्कर्य आपकी सेवा स्वरूप जो कुछ भी कार्य हमने किया है, करता हूँ, अथवा करूँगा वह सब श्रीसीता जी के लिये समर्पण है, ऐसा अनुसन्धान नित्य ही करना चाहिये ।

तच्चतुर्थ्यास्वानुरूप कैङ्कर्य प्रार्थनोच्यते ।
विषयान्तर सेवाऽपि प्राप्ता सा विनिवर्त्यते ॥

श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर:

मन्त्रराजमें आई हुई उस चतुर्थी विभक्ति से अपने स्वानु रूप कैङ्कर्य लाभ की प्रार्थना कहीं गई है, तथा अन्य बिषयान्तरों की सेवा रूचि प्राप्त हो तो उसका भी निवारण कर भगवत्-सेवा में ही लगे रहना चाहिये यह भाव व्यक्त किया गया है । गीता में प्रभुने इसीलिये कहा है कि—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

जो कुछ सत्कार्य करें, जो कुछ भोजन करे, जो कुछ हवन करे, जो कुछ दान प्रदान करे, जो कुछ तपस्या करे हे अर्जुन ! तू तो वह सब कुछ मुझे हो समर्पण कर दिया कर । यह दिव्य भावना 'सीतायै' यह चतुर्थ्यन्त पद से अभिव्यक्ति होती है । इसके पश्चात् मन्त्र राज का अन्तिम चरण 'स्वाहा' पद आता हैं —

देवताओं का स्वाहान्त मन्त्र नमस्कार- निछावर, बलिहार समर्पण अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। त्रैलोक्य मोहन श्रीराम कवच में श्रीराम जी के अनेकों मन्त्र स्वाहान्त हैं। श्रीहनुमान जी के तो प्रायः अधिक मन्त्र स्वाहान्त है। श्रीकृष्ण मन्त्र श्रीराधा मन्त्र भी स्वाहान्त है। त्रिपाद विभूति नारायणोपनिषद् में अनेकों मन्त्र स्वाहान्त हैं,। श्रीलक्ष्मी तन्त्र में श्रीलक्ष्मीजी के अनेकों मन्त्र स्वाहान्त हैं। इस प्रकार 'स्वाहा' शब्द का स्वारस्य न जानकर कुछ लोग विशेषतः श्रृंगाररसोपासक 'नमः' लगाकर श्रीसीता मन्त्रोपदेश करते हैं। स्त्रियों को स्वाहा प्रयुक्त मन्त्र न देना चाहिये, ऐसा मानकर भी कितने द्विजाति पुरुषों को 'स्वाहा' तथा स्त्री शूद्रों को 'नमः' लगाकर मन्त्रोपदेश करते हैं। अर्थ में कोई विशेष अन्तर न पड़ने से 'स्वाहा' कहें अथवा 'नमः' कहें कोई आपत्ति न मान कर दोनों प्रथायें अद्यावधि प्रचलित हैं। परन्तु स्त्री-शूद्रों को भी 'स्वाहा' तथा प्रणव प्रयुक्त कितने मन्त्रों का अधिकार महर्षियों ने दिया है।

जैसे अनुपनीत ध्रुवकुमार को यज्ञोपवीत के अभाव में भी 'ॐनमो भगवते वासुदेवाय'' यह द्वादशाक्षर मन्त्रोंपदेश प्रणव सहित देवर्षि नारद जी ने दिया है, यह बात सर्वजन प्रसिद्ध है।

उसी प्रकार स्त्रियों के पुंसवन व्रत में "ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा' इत्यादि श्रीमद्भागवत प्रसिद्ध मन्त्रों में प्रणव तथा 'स्वाहा' दोनों से संयुक्त मन्त्र स्त्रियों को ही प्रतिदिन दश वार जपने का विधान है! अन्य शास्त्रों में भी-

सदा प्रपन्नशूद्राणां सर्वेषां मोक्षकांक्षिणाम् ।
मत्सायुज्यसिद्ध्यर्थं द्विजधर्मोक्त वद् भवेत् ॥

—वृद्धपाराशरः ।

त्रैवर्णिकानां वेदोक्तं सम्यक् भक्तिमतामपि ।
आहुरप्युत्तम स्त्रीणामधिकारं तु वैदिके ॥

व्योम संहिता ।

श्रीनारद पञ्चरात्र की इन संहिताओं ने यह स्पष्टीकरण किया है कि जो भगवत्प्रपन्न हैं मोक्ष की कामना से भगवान् के शरणागत श्रीवैष्णव हुए हैं, उन शूद्रों को भी मेरे सायुज्य की प्राप्ति के लिये द्विजों के लिये किये गये विधानों के समान हीं वेदोक्त कर्म करने का अधिकार है क्योंकि— "कृपया गुरुदेवस्य द्वितीय जन्म हो जाता है, वे भी 'द्विज' हो जाते हैं। तीनों वर्गों के द्विजातियों को तो वेदोक्त कर्म करने का अधिकार स्वतः प्राप्त है ही परन्तु सम्यक् रीति से भक्ति करने वाले द्विजेतरों का तथा उत्तम चरित्र प्रभुशरणागत स्त्रियों को भी वैदिक विधान करने का अधिकार है। अतएव 'स्वाहान्त' श्रीसीता मन्त्र जपने का प्रत्येक श्रीवैष्णव को अधिकार है, इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिये। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ होता है कि—

"सुष्ठु आहूयन्ते देवा अनेनेति स्वाहा ।"

जिसके द्वारा देवताओं का सुन्दर भावना पूर्वक आवाहन किया जाय उसको 'स्वाहा कहते हैं। आराध्यदेव के मन्त्रार्थ में जप रूप सेवा का फल प्रियतम प्रभु के श्राचरणों में समर्पण

करने की भावना का द्योतक स्वाहा शब्द है। ऐसे तो—

"स्वाहा देवहविर्दाने स्वाहा च हुतभुक् प्रिया।"

'स्वाहा' देवताओं को हवि प्रदान करने में तथा आराध्य के श्रीचरणों में सर्वस्वसमर्पण करने में बलिहार निछावर हो जाने में प्रयुक्त होता है। तथा स्वाहा अग्निदेवकी प्रिय शक्ति का नाम है परन्तु यहां तो—

सर्वं त्वदीयं न ममास्ति किञ्चित्

अहं त्वदीयो न ममाहमस्मि।"

हे श्रीस्वामिनीजू ! मेरा सर्वस्व तो आपका ही है। मेरा तो कुछ भी है ही नहीं। मेरे पास मेरा कहाने वाला जो कुछ मेरापन हैं, वह सभी आज आप के सुचारु चरणों में 'स्वाहा' निछावर समर्पण बलिहार करता हूँ। इस दिव्यभावना का वाचक 'स्वाहा' शब्द है। इसको अधिक स्पष्ट करने के लिये शास्त्र कहते हैं कि—

बीजार्थ सम्प्रदाने च तन्मन्त्रार्थोक्त मन्त्रिणी।

नमः स्वाहा समष्टिभ्यां प्रयुक्तार्थं समर्पणम्॥

स्वस्यार्थो वाचकः 'स्वा' तु 'हा' कारस्त न्निरोधकः।

स्वात्मार्थो ब्रह्मणो युज्यात् स्वाहार्थोऽयं निगद्यते॥

अभियुक्त सारावली अ.५।

मन्त्र के प्रथमाक्षर बीज में ही मन्त्र के आराध्य देव का स्वरूप प्रतिपादन करने वाला सम्पूर्ण मन्त्रार्थ सन्निहित रहता है। चतुर्थी विभक्ति संयुक्त इष्टदेव का नाम भक्त का सर्वस्व श्रीभगवान् की सेवा के लिये ही है, इस भावना का द्योतक होता

होता है तथा अन्त में 'नमः' अथवा 'स्वाहा' शब्द समर्पण की भावना का प्रतीक होता है।

स्वा शब्द अपने सम्पूर्ण स्वार्थों का द्योतक है तथा हा शब्द उसका नितान्त निरोध करने का निर्देश करता है। अपने आत्मा का सम्पूर्ण स्वकीय प्रवृत्तियों का एकान्त समर्पण ही स्वाहा शब्द का अर्थ कहा गया है।

हे माँ भगवती सीते! आपकी कृपा से मैंने आप श्रीयुगल प्रभु का जो कैङ्कर्य किया है-करता हूँ अथवा करूंगा वह आपके दिव्य मङ्गलमय पादारविन्दों में समर्पण करता हूं। 'यह भाव' स्वाहा देवहविर्दाने' प्रकट करता है।

सुष्टु आह्वायन्ते देवा 'अनेनेति स्वाहा' इस व्युत्पत्ति का भाव श्रीकिशोरीजू का स्नेहार्द्र हृदय से पुकार कर उनके श्रीचरणों में अपना आत्मसमर्पणकरने की दिव्य भावना का द्योतक है!

जिनको आचार्य परम्परानुसार 'नमः' प्रयुक्त श्रीसीतामन्त्र मिला है, उनको 'नमः' शब्द का अर्थ इस प्रकार करना चाहिये।

नमः पदेनाखण्डेन स्वात्मात्मीयत्वमुच्यते।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्य भोक्तृत्वमुच्यते॥

-श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर।

नमः पद दो प्रकार का होता है, एक अखण्ड दूसरा सखण्ड। अखण्ड पक्ष में 'नमः एक पद है। सखण्ड पक्ष में 'न-मः' इस प्रकार दो पद माने जाते हैं।

अखण्ड नमः पद में आत्मा और आत्मीय परमतत्त्व का

समर्थन किया गया है, श्रीजू ही सब की आत्मा हैं और सचराचर उनका आत्मीय है यह भाव प्रकट होता है।

सखण्ड पक्ष में 'मः' म् शव्द के षष्ठी विभक्ति का रूप है। उसमें भोग्य भोक्तृत्व का सम्बन्ध कहा गया है। श्रीजी ही भोक्ता है तथा सचराचर विश्व उनका भोग्य है। अब 'म' शव्द का मुख्यार्थ समझाते हैं–

मकार वाच्य जीव ज्ञानस्वरूप-आनन्दस्वरूप तथा ज्ञान आनन्द गुणवाला भी है। देह तथा इन्द्रियादिकों से भिन्न है। अनेक है, अणु परिमाण वाला है, भगवान् का परम-प्रिय है भगवान् ही उसके सहायक हैं नित्य हैं, स्वयं प्रकाश हैं जिज्ञासु तथा विद्वानों के द्वारा जानने योग्य है–

ज्ञानानन्दस्वरूपोवगति सुखगुणो मेनवेद्योऽणुमानो
देहादेरप्तपूर्वो विदित बहुविधस्तत्प्रियस्तत्सहायः।
तार्तीयेकेन जीवो विजनिरिह पदेनोच्यते स्वप्रकाशो
जिज्ञासूनां सदेत्थं सुश्रुतिरतमते शास्त्रवित्सज्जनानाम्

–श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर–१९।

पदेन षष्ठेन मइत्यनेन स्वस्वाम्यमन्यार्हकशेषतापि–
समुच्यते चेतन वाचिनात्र तत्किङ्करत्वैकफलाधिपत्यम्

--श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर २७

षष्ठ्यन्त 'म' पद से यह कहा गया है कि 'म' पद वाच्य जीव का स्वस्वामि भाव अथवा शेष शेषिभाव केवल भगवती श्रीकि-शोरीजी के साथ ही है अन्य किसी के साथ नहीं है। तथा श्रीजू

के कैङ्कर्य की प्राप्ति ही सभी सत्फलों का श्रेष्ठ परम फल है।

अखण्ड नमसा रूपं तदुपायस्य गद्यते ।

सखण्डे तु मकारेण षष्ठ्यन्तेन विरोधिनः ।

—श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर-३० ।

अखण्ड 'नमः' शब्द से उपाय का स्वरूप अर्थात् भगवत् प्रणति ही उनकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। यह स्पष्ट होता है। तथा सखण्ड नमः शब्द में षठ्यन्त 'मः' पद विरोधी स्वरूप का वर्णन करता है। 'मः' माने मेरा अन्य कोई न माने नहीं है सबका त्यागकर श्रीजी की कृपा का ही एकमात्र आधार है।

विरोधिनो निरासोऽत्र नमः शब्देन वर्ण्यते ।

—श्री वै० म० भा० ४० ।

नमः पद से यह कहा गया है भगवद्-भक्तों को प्रभुप्राप्ति के प्रबल विरोधी भगवत् भागवत् अपराधों का अश्रद्धा-असूया-काम क्रोधादिकों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

बाधक सबके सब भये, साधक भयो न कोय ।

'तुलसी' रामकृपालु ते; होनी होय सो होय ॥

बने तो रघुवर से बने, बिगड़े तो भरपूर ।

'तुलसी' और न ते बने, ताबनिवे में धूर ॥

गङ्गा यमुना सरस्वती, सप्तसिन्धु भरपूर ।

'तुलसी' चातक के मते; बिन स्वामी सबधूर ॥

श्रीसीता तथा श्रीराम का अविच्छिन्न अनादि सम्बन्ध है अतः

कहा गया है कि-

राममन्त्रे स्थितासीता सीता मन्त्रेरघूत्तमः

-श्रीवृहद्विष्णु पुराण-

इसी सिद्धान्तानुसार श्रीराम मन्त्र में 'रामाय' चतुर्थ्यन्त पद से चेतन अचेतन समस्त जगत् के रमणका सुख का आश्रय श्रीपद वाच्य श्रीसीताजी हो हैं।

रामायेति चतुर्थ्या च श्रियोदेव्यास्तु सर्वदा

चेतना चेतनानाञ्च रमणाश्रय ईर्यते ॥

श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर में श्रीमद् भगवद्रामानन्दाचार्यजी महाराज ने उपर्युक्त श्लोक द्वारा श्रीराम मन्त्र में श्रीसीताजी के स्वरूप का स्पष्टीकरण किया है। उसीप्रकार-

प्रोक्ता सीताशकारेण रकाराद्राम उच्यते।

ईकारादीश्वरीं विद्यान्मकाराज्जीव उच्यते ॥

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड पठित इस वाक्य द्वारा 'श्रीं' बीज रकार में श्रीराम का स्वरूप प्रतिष्ठित है, यह भाव स्पष्ट किया गया है। इसलिये इस भावना का स्मरण रखकर सदैव श्रीयुगल प्रभु का चारु चिन्तन करते हुये श्रीसीता मन्त्र काजपकरते रहना चाहिये।

ऐसे परम करुणामय श्रीयुगल सरकार की कृपा रहते हुये भी अभागे जीव उनकी आराधना न कर व्यर्थ ही विपरीत आचरण द्वारा श्रीयुगल प्रभुको ही दारुण दुःख देने को तैयार हो जाते है इस पर अत्यन्त कुपित होकर एक सहृदय सन्त श्रीजू से

प्रार्थना करते हुये कहते हैं कि-

नेतुर्नित्यसहायिनी जननि नस्त्रातुं त्वमत्रागता-
लोके त्वन्महिमावबोधबधिरे प्राप्ता विमर्दं बहुः।
क्लिष्टं ग्रावसु मालती मृदुपदं विश्लेषवासो वने-
जातो धिक्करुणां धिगस्तु-युवयोः स्वातन्त्र्यवत्यद्भुतम्।

श्रीगुणरत्न कोशः।

हेमाता ! अपने प्राणप्रियतम के साथ नित्यनिरन्तर असहाय जीवों को सहायता प्रदान करनेके लिये, उनको दिव्य धाम में ले जाने की अति उच्चतम भावना से आप इस धरातल पर मृत्यु भुवन में पधारी हैं। परन्तु आपकी इस महान् महिमा को न जान कर लोगोंने आपके कल्याणप्रद हित बचनों को तो सुने ही नहीं उल्टे बहिरे बनकर आपको ही अत्यन्त कष्ट प्रदान किये। यहां तक कि मालती पुष्प का पांखड़ियों से भी अत्यन्त सुकोमल आप के श्रीचरणारविन्दों को वन में निवास कर महान् क्लेश भोगना पड़ा- इतना ही नहीं अपने प्राणनाथ का भी वियोग भोगना पड़ा इतना बड़ा अनर्थ, इतना महान् कष्ट आपकी जिस करुणा ने आपको भोगवाया धिक्कार है उस आपकी अमर्यादित करुणा को तथा धिक्कार है आप युगल प्रभु की अद्भुत स्वातन्त्र्यता को ! अर्थात् आपकीअपार करुणा तथा आपकी निरङ्कुश स्वतन्त्रता ही आपको इतना दुःख सहने को विवश बना देती है, धन्य है आपकी इस करुणामयीनिस्सीम दया।

श्रीसीता-मन्त्रार्थः
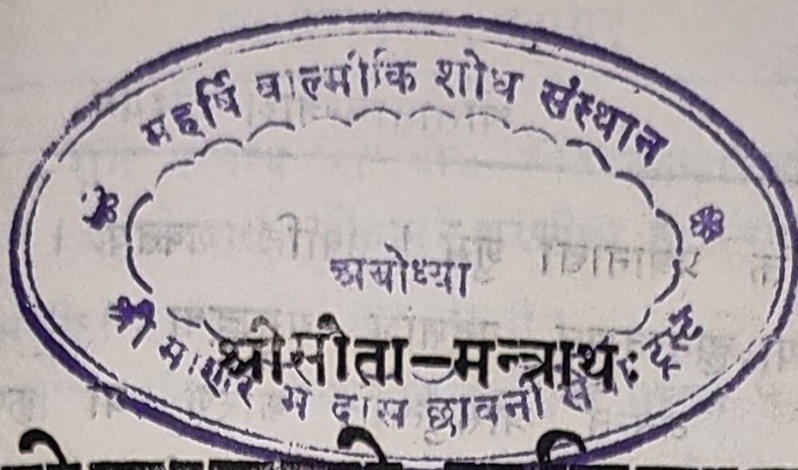
श्रीजानकी-चरितामृतम्

चतुर्थोऽध्यायः

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच—

स्वाहान्त षट् पदैर्युक्तः शकारादिर्मनु स्त्वयम् ।
तस्यैकैक पदस्यार्थं मुच्यमानं मया शृणु ॥

शकारार्थो हि जीवोऽयं सर्वसेवा विलक्षणः ।
रेफस्यार्थंस्तु श्रीरामः कोटि ब्रह्माण्डनायकः ॥२॥

ईकारो मूलप्रकृतेर्वाचकः कथ्यते बुधैः ।
परीता जीव ब्रह्माभ्यां पदेनानेन गद्यते ॥ ३ ॥

'स' सूच्चारणादस्मिन् प्रेमानन्द रुचाँ सदा ।
सहजामल भाग्यस्य भवेत्प्राप्तिर्न संशयः ॥४॥

'ता' पदोच्चारणं वेद्यं त्रिगुणार्णवतारणम् ।
तीव्र वैराग्य सन्दोह मनुरागाङ्कुरार्द्धनम् ॥५॥

प्रिय संयोगदं नित्यं तद्वियोगाधि नाशनम् ।
'ता' पदोच्चारण ज्ञेयं भाव तारुण्य पूरणम् ॥६॥

यावत्कृत्यं हि सीतार्थं प्रापिनोऽशेषमेवतत् ।
प्रधानं तत्सुखं मत्वा चतुर्थ्यर्थोऽयमुच्यते ॥७॥

स्वाहा स्वातन्त्र्य मुत्सृज्य सुवृत्याऽनन्ययात्मनः
सर्वस्वं किल सीताया अर्पणार्थे प्रयुज्यते ॥८॥

अथ श्र्यादि नमोन्तस्य मन्त्रस्यार्थोऽस्य कथ्यते ।
श्रूयतां सावधानेन त्वयः संशुद्ध चेतसा ॥९॥

मूलशक्ति प्रधानाद्या शुभे ! सर्वाहि शक्तयः ।
गुणवत्यो ह्यनन्ताश्च यदंशांश समुद्भवा १०॥

अनन्त श्रीसमुत्पत्ति कारणं या कृपाकरी ।
प्रणिपातैक तुष्टा सा शर्मदा श्रीपदात्मिका ॥११॥

प्राप्ति बाधक दोषान्या स्वाश्रितानां हरेः सदा ।
हिनस्ति सर्वदुःखान्यमङ्गलानि दया परा ॥१२॥

या श्रृणोति सदा दुखं जीवानां सोप पत्तिकम् ।
भगवन्तं तथा रामं श्रावयत्यूरु वत्सला ॥ १३॥

शरणागत जीवेषु कृत्वा निर्हैतुकी कृपाम् ।
त्रायते सर्वदा प्रीत्या मार्जारी बालकानिव ।।१४॥

धर्मार्थ काम मोक्षाख्य चतुर्वर्गप्रदा हि सा ।
अनायासेन भक्तानां श्री शब्देन निगद्यते ॥१५॥

अस्य तप्तं हुतं जप्तं दत्तमाप्तमनुष्ठितम् ।
सुकृतं यद्धि सीतायै नेतरस्य शरीरिणः ॥१६॥

नमोऽर्थो नैव जीवस्य तदर्थोऽयं विभाव्यताम् ।
सर्वस्वं खलु जीवस्य श्रीसीतायै समर्पितम् ॥१७॥

नैवात्मानमहं त्रातु न कोऽपन्यो जगत्त्रये ।
विना सीतां क्षमो जातु श्रुतिज्ञानमिदं मतम् ॥१८॥

तस्मात्पूज्यो न मे कश्चित् नोपायो ध्येय एव नो ।
तामन्तरेण लोकेषु वैदेहीं जनकात्मजाम् ॥ १९ ॥

सा पूज्या मम सा ध्येया सोपास्या साऽश्रयोहिमे ।
वन्द्या मान्या ऽनुभाव्या साज्ञेया गेयाहिसा मता ॥२०॥

राम मन्त्रस्य 'रा' बीजे सीताऽकारात्मिकोच्यते ।
भवभीत्यार्त जीवानां शरण्यैका तदाप्तये ॥२१॥

सीतारामवुभावेकावखण्डौ ज्ञानविग्रहौ ।
तयोर्भेदं न पश्यन्ति पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ॥२२॥

तस्मात्तौ हि मम प्रेष्ठ सीतारामौ परात्परौ ।
नान्यदेवं विजानामि नान्यस्मान्मे प्रयोजनम् ॥२३॥

तयोश्च प्रार्षदा ये ते ह्यनन्योपासकास्तथा ।
तन्नामरूपलीलादि धामान्येव प्रियाणि मे ॥२४॥

अहमस्मि तयोर्भोग्यौ भोक्तारौ मामकौ हितौ ।
इत्येवं किल सीताया मन्त्रराजार्थं उच्यते ॥

—:)०(:—

"श्लोक अत्यन्त सरल हैं तथा श्रीसीता मन्त्रार्थ रहस्यम्' में ये सभी भाव आगये हैं अतः इसका अर्थ नहीं लिखा गया है। सुधी पाठक समझ कर श्रोताओं को सुनाने की कृपा करेंगे।

निवेदक "प्रेमनिधि"

श्रीयुगलानन्य शरणजी महाराज प्रणीत

श्रीसीता-मन्त्रार्थः

श्रीगुरु पद पङ्कज सु रज, नमो सुवारं-वार ।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, सुलभ मन्त्र सुखसार ॥१॥

श्रीसर्वेश्वरी स्वामिनी, सीता सुखप्रद मन्त्र !
अर्थ समर्थ अनर्थ हर, समुझौं स्वल्प स्वतन्त्र ॥२॥

प्रथम बीज 'श्री' विन्दु सह, कारण रमा अनन्त ।

मूला प्रकृति से प्रमुख, शक्ति हेतु गुणवन्त ॥ ३ ॥

परिकर प्रेम प्रणय विनय, आरत सुनि तत्काल ।
द्रवित दया दृग देखि द्रुत, करुणाकर नतपाल ॥ ४ ॥

रसिक पञ्चविधि शरण सद्-प्रेम विभव विस्तार ।
श्री अन्तर अनुपम रहस लसत उछाह अपार ॥ ५ ॥

निज स्वरूप लीला ललित, धाम धारणा ध्यान ।
हेतु चारु चिन्तन मणि, विन्दु विनोद वितान ॥ ६ ॥

विन्दु विशद धुनि सुनि श्रवण, सुधाश्रवत प्रतिरोम
युगलानन्यशरण सतत; वारिय सोम न तोम ॥ ७ ॥

'सी' सुशोभा सुषमा सभा, सरसानन्द अमन्द ।
सहज सुभाग अदाग रस; पूरण प्रेम मरन्द ।८॥

'ता' तारक तिहुं गुण जलधि, तीव्र त्याग दातार ।
तरुणी भाव न्यारण करण, उचरत स्वाद अपार ॥ ९ ॥

विमल विभक्ति चतुर्थं को, अर्थ चारु चित वीच ।
निखिल कृत्यश्रीस्वामिनो हिमि-तन-मन हित सींचा

सकृत सुरसना से कढत, बढत अमल अनुराग ।
पलक पाव प्रीतम विरतू, होत न निकट सुभाग ॥

तत्सुख परम प्रधान रस, रञ्जन यामधियात ।
निज स्वतन्त्रता त्यागि 'दृढ;' नमः अर्थ पहिचान ॥ ११ ॥

श्रीस्वामिनी शुचि अंश हौं सेवा कृपा अधीन ।
युगल स्वरूप अभेद पुनि, पारम अर्थं प्रवीण ॥ १२ ॥

सीताराम अभिन्नता, नित्य एक रसरूप ।

विशद विहार अखण्ड गुनि, परिकर रुचि अनुकूल ॥ १४ ॥
रहसि भाव सखि भाव अति, गोप्य किये फल दानि ।
प्रकट बकत मुद मोद नहि, होत हृदय रति हानि ॥१४॥

निज स्वरूप मुग्धादि रुचि, सरस भाव अनुकूल ।
संतत सहज संभारिये त्यागि पन्थ प्रतिकूल ॥ १५ ॥
कर्म ज्ञान योगादि मग, महँ नहिं करे सनेह ।
अनुछन मनन उपासना, करै विसरि त्रय देह ॥१६॥

कनक भवन श्रीसरयूतट, वन अशोक रमणीय ।
श्रीप्रमोदवन प्रमुख स्थल, सजे ध्यान कमनीय ॥ १७ ॥
नानामणि मण्डित महल, कुंज निकुंज उदार ।
शुचि रुचि सह रचना चितै, हो जाय बलिहार ॥१८॥

अरुझिरहे अन्तर बहिः कथन समय अनुसार ।
निज सत मत गोपन किये, रहे लहे सुखसार ॥ १९ ॥
युगल ललन सेवा सकल, कीजिय सुरुचि बढाय ।
श्रीस्वामिनी शरण सुदृढ सदा सुचाव चढाय ॥२०॥

दोहा बीस सुचेत चित कीजियमनन सुप्रेम ।
श्रीयुगलानन्य शरणसदा, महामोदमय क्षेम ॥ २१ ॥

इति श्रीयुगलानन्द शरणजी महाराज प्रणीत श्रीसीता मन्त्रार्थः सम्पूर्णः ॥

"श्री" बीजार्थः

शकारार्थस्सीता सुछबि करुणैश्वर्य विभवा-

ईकारार्थो भक्तिः स्वपतिवशयुवत्युज्ज्वलरसा ।
सुरेफार्थो रामो रमणरसधाम प्रियवशी-
मकारार्थो जीवः रसिक युगसेवा सुखरतः ॥

रां-बीजार्थः

रकारार्थो रामः सगुण परमैश्वर्य जलधिः-
मकारार्थो जीवः सकलविध कैङ्कर्य निपुणः ।
तयोर्मध्याकारो युगलमथसम्बन्ध मनयो-
रनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगमरूपोऽयमतुलः ॥

ॐ--प्रणवार्थः

अकारार्थो विष्णुर्जगदुदयरक्षा प्रलयकृत-
मकारार्थो जीवस्तदुपकरणं वैष्णवमिदम् ।
उकारोऽनन्यार्हं नियमयतिसम्बन्धमनयोः
त्रयीसारस्त्र्यात्मा प्रणव इममर्थंसमदिशत् ॥

श्रीसीतामन्त्र-जपविधिः

शुद्धोदकेन स्नात्वा धौतवस्त्रं धारयित्वा शुचौदेशे शुद्धासने स्थित्वा आचम्य प्राणायम्य ऊर्ध्वपुण्ड्रादिकं कृत्वा श्रीमन्त्रावाहनं कुर्य्यात्-

ॐ मन्त्रमूर्ते वराशक्ते सीते सर्वार्थ साधिके ।
एहि मे हृदयाम्भोजे, जगन्मातुर्नमोऽस्तुते ॥

ततः सङ्कल्पः-

ॐ अस्य श्रीसीतामन्त्रस्य श्री जनकऋषिः गायत्री छन्दः। श्रीसीतादेवता। श्रींबीजम्। स्वाहा शक्तिः। श्रीसीतायैकीलकम्। मम सकलमनोरथ सिद्ध्यर्थे श्रीसीताराम प्रीत्यर्थे (श्रीयुगलमाधुर्य दिव्यमङ्गल दर्शनार्थे) जपेविनियोगः।

अथऋष्यादिन्यासः—

ॐ जनकऋषये नमः शिरसि। ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे। ॐ श्रीं बीजाय नमः नाभौ। ॐ स्वाहाशक्तये नमः पादयोः। ॐ सीतायैकीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

अथ पदादिन्यासः—

ॐ श्रीं नमः शिरसि। ॐसीतायै नमोनाभौ। ॐस्वाहा नमः पादयोः।

अथ शब्दादि न्यासः

ॐ श्रीं नमः मुखे। ॐ सीतायै नमः हृदये। ॐ स्वाहाये नमःसर्वाङ्गे

अथ हृदयादिन्यासः—ॐ श्रां हृदयाय नमः। ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा। ॐश्रूं शिखायै वषट्। ॐ श्रैं कवचाय हुं। ॐ श्रौं नेत्राभ्यां वौषट्। ॐ श्रः अस्त्राय फट्। अथ करन्यासः—ॐ श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ श्री तर्जनीभ्यां नमः। ॐ श्रूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ श्रैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ श्रौंकनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ श्रः करतल-कर पृष्ठाभ्यां नमः। अथ अक्षरन्यासः— ॐ श्रीं ललाटे। ॐ सीं नासाग्रे। ॐ तां कण्ठे। ॐ यैं हृदये। ॐ स्वांनाभौ। ॐ हा पादयोः। **अथ दिग्बन्धः।** ॐ श्री रक्षतु प्राच्यां ॐ श्रीं रक्षतु उदीच्यां। ॐ श्रीं रक्षतु आग्नेयाम्। ॐ श्रीं रक्षतु नैऋत्याम्। ॐ श्री रक्षतु वायव्याम्। ॐ श्री रक्षतु ईशान्याम्। ॐ श्रीं रक्षतु ऊर्ध्वम्। ॐ श्रीं रक्षतु अधोभाने। (अथवा मूलमन्त्रेणैव दिग्बन्धनं कुर्व्वीत।) 'श्रींसीतायैस्वाहा रक्षतु प्राच्याम् इत्यादिना।'

अथध्यानम्—

बन्दे विदेह तनया पद पुण्डरीकं
कैशोर सौरभ समादृत योगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंस सेव्यं-
सम्मान शक्ति परिपीत परागपुञ्जम् ॥
कौशेय पीतवसनामरविन्द नेत्रां-
रामप्रियाऽभयवरोद्यत पद्महस्ताम् ।
उद्यच्छतार्क सदृशीं परमासनस्थां-
ध्यायेद्विदेहतनयां सखिभि सहस्राम्,
स्वर्णाभामम्बुजकरां रामालोकनतत्पराम् ।
ध्यायेत् षट्कोण मध्यस्थां रामाङ्कोपरिशोभिताम् ॥

अथ श्रीजानकी गायत्री—

ॐ जनकनन्दिन्यै बिद्महे, रामवल्लभायै धीमहि तन्नो सीताप्रचोदयात् । **शरणागति मन्त्रः** । श्रीसीताशरणं मम । **अथ श्रीसीता द्वयमन्त्रः—**श्रीमज्जनकजाचरणौ शरण प्रपद्ये श्रीमत्ये जनकजायै नमः । **श्रीसीता चरम मन्त्रः—** पापानां वाऽशुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्य्येण न काश्चिन्नापराध्यति ॥

इन मन्त्रों का जप करके—

मां माण्डव्यै नमः 'उँ' उर्मिलायै नमः श्रुं श्रुतिकीर्त्यै नमः । चं चन्द्र कलायै नमः । गुं गुरवे नमः । इन पांचो मन्त्रों का पांच-पांच बार जप करके —"श्रीसीतायैस्वाहा । रां रामायनमः" इस युगल मन्त्र की १ माला जप करके "श्रीसीतायै स्वाहा" इस

महामन्त्र को १० माला अथवा यथाशक्ति जप करके पुनः श्रीयुगल मन्त्र की १ माला जप कर के ऊपर वाले पांचों मन्त्रों का ५-५ बार जप करे। तब श्रीसीता-गायत्री-शरणागतिमन्त्र चरममन्त्रादिक का पूर्ववत् जप करके प्रार्थना करे—

"ॐ सदाऽनुग्रह सम्पन्ने श्रीमन्त्रार्थैक विग्रहे !

कोशलेन्द्र प्रिये देवि श्रीसीते ! त्वां नमो नमः ॥

ऐसी प्रार्थना करके जपका पुण्यफल "श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु" कह कर श्रीयुगल प्रभु के श्रीचरणों में अर्पण कर श्रीसीता रामनाम स्मरण करते हुए श्रीगुरुमहाराज सत भगवन्त को प्रणाम कर अपना नियम पूर्ण करे।"

"श्रीसीतासूक्त के ५ मन्त्र"

अर्वाची सुभगे भवसीते बन्दामहे त्वा।

यथा नः सुभगा आससि यथानः सुफला अससि ।

ऋग्वेद-४।५७ अथर्व ३।१२ तै. आ. ६-६-२

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वे देवैरनुमता मरुद्भिः ।

सा नः सीते पयसाऽभ्यववृत्स्व उर्जस्वती घृतवत्-

पिन्वमाना ॥

—अथर्व० ३।१७।६

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।

सा नः पयस्वती दुहा मुत्तरामुत्तरां समम् ॥

अथर्व-३।१७।४ ऋग्वेद-४।५।७

इन्द्रपत्नी मुपह्वये सीतां सामेत्वन्नपायिनी भूयात् ।

पारस्कर गृह्यसूक्त-२।७७ ६

सीता ऋध्या वीजेषु धनेषु च ।

आत्मा की पुत्र भावना—

विश्व अमृतस्य पुत्राः- ऋग्वेद १० । १३ । १

त्वं पितासिनः " १ । ३१ । १

नहित्वदन्य अस्ति पिता चनः । अथर्व-२० । ८३ । २

त्वं हिनः पिता यजुर्वेद १७ । २७ ।

अहं बीजप्रदः पिता गीता १४-४ ।

युगल प्रभुका ध्यान-

अङ्कालङ्कृति मैथिली स्मित समुन्मीलत्क पोलस्थली-
रत्नादर्श विशदप्रसन्नवदनः देवः प्रसन्नोऽस्तु नः !

श्रीजानकी चरण चामर

सुभाषितम्

गर्व करहु रघुनन्दन जनि मन माँह ।
आपन रूप विलोकहु सियजू के छाँह ।। बरवैरामायण

सिया मुख शोभा साज, धोये हाथ बिरंचि रचि ।
जलधुई भेद्विजराज, करझारे तारे भये ।।

द्वादशाब्द वयोचिता नित्यानन्द विधायिनी ।
जानकी मैथिली सीता किशोरी कनकोज्वाला ।।

—शिवसंहिता ।

श्रीसीता शब्द के सौ अर्थ

(विद्वद्वरेण्य श्रीउमापति त्रिपाठी अयोध्याबासी कृत)

"सीता लाङ्गलपद्धति स्तज्जातत्वात् सीतेति प्रसिद्धम्"

अथ विलक्षणोऽर्थः

"सोऽस्ति यस्यास्सा सीति तेऽस्ति यस्यास्सा 'ता' पूर्वस्मिन् इत् प्रत्ययः परस्मिन् च टाप् तयोः कर्मधारयः । अन्येषामपि पूर्वं पदस्येति दीर्घः ।"

१-'स' पृथिवी वह जिसकी माता है वह 'सी' मातृत्व-क्षमा-योगक्षेम धारण-सर्वपदार्थं वितरण सर्वकाल पुष्टता-क्लेशराहित्य-पीत बर्ण-यज्ञाधारत्व-पूज्यत्वादि गुणगण विशिष्टि सूचित हुआ ।

२-'स' माने मातृत्व गुण सम्पन्न कन्या 'ता' माने श्रीसुनयनाजी के क्रीड में शोभित 'सीता'

३-'स' पद से आकाश उसके लाक्षणिक गुण शब्द-व्यापकत्व-निर्लेपत्व-सर्वगति-गुण सम्पन्ना 'सी' विद्या सर्वगुण चातुरी सम्पन्न । 'त' पद से द्यूत क्रीडा आदि बालकौतुक केलि प्रवीण सर्वविद्या-माधुरी-चातुरी आदि क्रीडा सम्पन्न 'सीता'

४-'स' पद से धनुष उठाकर स्वयंबर में प्रण करने वाली सो 'सी'। 'त' पद से शङ्कर तदर्धाङ्गिनी गौरी को पूजन कर पति लाभ प्राप्त सो ता' । क्रमशः वयोवृद्धि कर विलक्षण रचना पटु सीता ।

५-'सी' विलक्षण विभूति-शोभा माधुरी चातुरी से सुशोभित 'ता' शंकर भाव सखी वृन्दों का भक्तों का कल्याण करने वाली अभिष्ट फल दात्री 'सीता'

६-सी-परोक्ष प्रत्यक्ष न होना लज्जा भावना से नवोदा दुलहिन

की भाव पुष्टि करने वाली 'सीता'

७-'सो' पार्वती जी जिनकी प्रशंसा करे सो 'सी' देव लोक प्रसंसित। 'त' पदेन तछकादि नाग प्रशंसित, अधोलोक पाताल वासी प्रसंसिते त्रिलोक वन्दिता' 'सीता'

८-'स' स्वामी सर्वेश्वार वशीकरणी सो 'सी'। 'त' पदेन 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' ब्रह्म को पुच्छ श्रुति ने कहा है उससे पर कोई अङ्ग नहीं है सर्वात्मत्व प्रतिष्ठा-सर्वाधार- दिव्य ब्रह्मभूत देह-उसको भी प्रदीप करने वाली 'सीता यहां प्रौढाका भाव व्यक्त हुआ।

९-'स' पद से प्रणय कोप सम्पन्नता 'सी मानवती। 'त' पद से मानविमोचनार्थं विनय करने वाले श्रीरघुनन्दन सम्मुख हैं जिनके सो 'सीता'। यह कौशल खण्ड की लीला है।

१०-'स' पद से श्रीरघुनन्दन का क्रीड़ा काल में चाञ्चल्यादि निवारण कर मर्यादित रखे सो सी। 'त' पद से तीव्र 'दृष्टि-मात्र से ही स्वामी को शान्त कर देने वाली 'सीता'।

११-'स' पद से स्वामी के सत्कार में परायण सानुकूल श्रीरघु-नन्दन की सेवा करने वाली 'सी'। 'ता' पद से नीला-श्यामा षोडषवर्षिकी कृत्यकुशला-इस वयमें ऐसी कुशलता तथा अद्भुत गुणगांभीर्य सम्पन्ना 'सीता'।

१२-'स' पद से चारण सिद्ध-गन्धर्व-किन्नर सर्वेशादि सकल जिसको ज्ञान नृत्यादि से प्रसन्न करे सो 'सी'। 'ती' पद से सकल श्रृंगार सहायक वस्तु अभिलाषिणी 'सीता'।

१३-'स' पद से शूली महादेव सकल खल दल दलनकर्ता तथा 'त' पद से हरि विघ्न हर्ता-सुखसमूह प्रदायक-दोनों देव जिनके गुण गण के वशीभूत होय सो, शृंगाररस विघ्न निवारक-प्रेम, सुख प्रदायक ज्ञातृत्व सम्पन्न 'सीता'।

१४-'स' पद से स्यति नाशयति महाद्रुमानां सः हस्ती-गजगामिनी वामोरु-सौन्दर्य-लावण्य-पीनत्व मन्दगति विभूषित 'सीता'।

१५-'स' पदेन सस्य क्षेत्रस्थ हरितवर्ण वन वाटिका विहारिणी सुख सम्पादक-शृङ्गार प्रयोजक दर्शनप्रिय-'सी'। 'ता' पद से तरल तरुण्य सम्पन्न रासक्रीडा प्रवृत्त नृत्यगति हास विलास तरलता शोभित 'सीता'।

१६-'स' सूक्ष्मकाशे रासगति में जो भूमि आकाश दोनों में दीखती सी लगे सो 'सीता'। 'ता' पद से सुखी तथा श्री-पति के हृदय मन-चित्त-बुद्धि को पुराने वाली 'सी'।

१७-'सी' जिसकी रास क्रीडा में श्रीलक्ष्मीजी भी मोहित हो गयीं। कथा है कि-'एकबार श्रीसरयूजी लोकान्तर विचरण करते हुये वैकुण्ठ धाम में गयीं, वहां श्रीलक्ष्मीजी मिलीं, श्रीसरयूजी के के स्वरूप को देखकर श्रीलक्ष्मीजी मोहित हो गयीं, उनसे प्रार्थना करते हुए कहा कि-'जहां की आप हैं वहां हमको ले चलें, तो श्रीसरयूजी श्रीलक्ष्मीजी को श्रीकिशोरीजी के पास ले गयीं, वह श्रीकिशोरी जी की रामलीला देखकर ऐसी विमुग्ध हो गई कि वैकुण्ठ जाने की बात ही भूल गई अतः 'सी' माने लक्ष्मीजी को भी मुग्ध करने वाली। 'ता' पद से तीव्र दीप्ति

शोभसौभाग्य-सुषमा सम्पन्न 'सीता'।

१८-'स' पद से लज्जा तथा 'त' पद से क्रीडापति के क्रोड में विहार करते समय भी लज्जा भाव प्रकट करती हैं। नवोढा और प्रौढा दोनों अवस्थाओं का सम्मीलन जिसमें हो वह 'सीता'।

१९-'स' याने सत्कार पति तथा सखीजनों द्वारा प्राप्त होने पर 'त' माने द्यूत क्रीडा-पतङ्ग गेन्द-चौपट-आदि कौतुक में प्रवृत बड़ी सत्कार युक्त 'सीता'।

२०-'स' माने शारंग धनुष जिनके पास है ऐसे स्वामी को चुराकर धनुष रख लेने पर जब न मिला तब बड़े प्रेम से निहोरा करने पर चुराया हुआ धनुष देकर प्रसन्न करने वाली 'सीता'।

२१-'सी' पद से सत्कर्म में उग्रता शीघ्रता तथा अप्रिय कर्म में प्रवृत्ति न करने वाली 'सीता'।

२२-'स' माने शिव धनुष तोड़कर तथा श्रीपरसुराम से विष्णु धनुष लेकर खलदल दलन श्रीरघुनन्दन को इता प्राप्त उद्वनीय वाञ्छनीय 'सीता'।

२३-'सी' माने भूमि प्रवृत्त सर्वगुण सम्पन्न श्रीरघुनन्दन उनको इता प्राप्ता है सो 'सीता' इस प्रकार अनेक अर्थ सरस होते हैं।

२४-'सी' रघुनन्दन तिनको ई-लक्ष्मी सर्वप्रकारेण इता प्राप्ता अभेद भाव से रहे वह 'सीता'।

२५-'सी' रघुनन्दन उनकी 'इ' कामना की पूर्ति करने वाली 'सीता'।

२६-'सी' लक्ष्मी उसको ता विस्तार करे 'नुत' विस्तारे ड प्रत्ययः वह 'सीता'।

२७-'सी' भगवत्प्राप्ति कामना का जो विस्तार करे प्रीति भक्ति बढावे सो 'सीता'।

२८-'सी' सिन्त्वनोतीति व्युत्पत्ति से दे पूर्वपद दीर्घःसे दीर्घ करने पर सी रघुनन्दन की कीर्ति का विस्तार करे उनका लालन पालन भरण पोषण करे वह 'सीता'।

२९-'सो' माने अपने 'ता' माने आकांक्षी की अनुक्षण चाहना करे वह 'सीता'। 'तुम अकांक्षामय' धातु से ड प्रत्यय।

३०-'सी' माने भक्त जन तथा भगवान की 'ता' माने रसिकमण्डली में प्रतिष्ठा करने वाली तल-प्रतिष्ठायाम्' अर्थात् प्रभुका ऐश्वर्य तथा माधुर्य सर्वदा सुप्रतिस्ठित रखनेवाली 'सीता'।

३१-'सी' माने प्रियतम प्रभुको तथा श्रीचरणाश्रित सेवकों को ऐश्वर्ययुक्त करे वह 'सीता'। 'तपऐश्वर्ये जो श्रीरघुनन्दन की ऐश्वर्य स्वरूपा है वह 'सीता'।

३२-'सी' श्री प्रभुको 'ता' माने ताप कर्त्री अर्थात् मानलीला प्रभु के द्वारा तथा दुष्टजनों को भगवद्विमुखता का भय दिखाकर सन्ताप करने वाली 'सीता'। 'तप सन्तापे' प्रत्यय,

३३- 'सी माने प्रभुको वियोग से तथा जीवों को हित कामना से भयभीत करके दुःख प्रदान करे।

३४-'स' माने सबको 'ता' माने हास्य प्रदान करे। वेष लीला-क्रीडा कल भाषणादि द्वारा हँसे हँसावे वह 'सीता'। 'तक-हसने' ड प्रत्यय।

३५-सी माने सबको ता माने डरावै तर्जं भर्त्सने कुपथ से निवारण करे सुपथ में चलावै वह सीता-।

३६- सी- जीव जगत् तथा जगदीश्वर का पालन करे। वह सीता- तेज-पालने- ।

३७-सी- माने जीवों को धृष्टता करने पर तथा प्रणय प्रसंग में प्रियतम को ताडना करे सो सीता- तडि- ताडने- ।

३८-'सी' अनधिकारियों को 'ता' माने अधिकार से च्युत करे सो 'सीता' 'तिपृ क्षरणे'।

३९- स- माने ऊपर से दिखावा मात्र ता- माने कम्पन करे वह 'सीता' 'तेपृ कम्पने ।

४०- 'सी' कहे प्रभुकी लीला ऐश्वर्य दोनों विभूति का जो प्रवन्ध करें वह 'सीता' 'तापृ प्रवन्धे'।

४१-स्थूल सृष्टि का निर्माण करे वह 'सीता' 'तीव स्थौल्ये' ।

४२-हास विलास में अपने कुल तथा सखी जनों का पक्ष लेकर प्रियतम पक्ष की जो न्यूनता दिखावै वह 'सीता' 'तक्षु तनूकरणे'।

४३-पीताम्बरादिक वस्त्रों का संवरण करे वह 'सीता' तक्ष-त्वचने' :

४४-प्रिय शब्दों द्वारा एकान्त बार्तालाप करे हितोपदेश करे वह 'सीता' 'तुक्ष-शब्दे ।

४५-प्रियतम के प्रेम की याचना करे सो 'सीता' तुहिर अर्छने।

४६-प्रियतम के साथ जल बिहार करे सो 'सीता' तृ-प्लवन

तरणयोः ।

४७-प्रेम भक्ति ज्ञान वैराग्यादि सदगुणों को तीक्ष्ण करदे सो 'सोता' त तीक्ष्णे ।

४८-प्रेमभाव से प्रेमियों के हृदय को द्रवीभूत करदे वह 'सीता' 'तिम आर्द्री भावे' ।

४९-मद्गुणों को वढादे वह 'सीता' 'तु वृद्धौ' ।

५०-भक्तों का कल्याण करने में तथा दुखियों का दुःख हरण करने में जो अत्यन्त त्वारा करे वह 'सीता'। 'तुरत्वरणे' ।

५१-अक्षय सुख देकर जीवों को तृप्त करदे वह 'सीता' 'तृप प्रीणने' ।

५२-पाप संताप का क्षय करदे सो 'सीता' 'तसु-उपक्षये' ।

५३-जिसको प्रेमको पिपासा सदैव बनी रहे तथा प्रियतम के प्रेम को पिपासा सदैव बढ़ाती रहे वह 'सीता' 'तृप् पिपासायाम्, ।

५४-जो सदैव सन्तुष्ट रहकर सब को सन्तुष्ट करे वह 'सीता' 'तुष् तुष्टौ' ।

५५-जा प्रेम से प्यारे को दबाये रहे वह सीता' तिस आस्कन्दने, ।

५६-स्व लावण्य माधुर्य्य-सौन्दर्यादि द्वारा प्रिय तम के हृदय में असमय में भी कामना उत्पन्न कर व्यथित करदे वह 'सीता' 'तुद् व्ययने' ।

५७-लोला कौतुक को अभिवृद्धि के लिये आनन्द बढाने को जो कभी-कभी प्रेम प्रणय में कुटिलता भी कर दिखावै सों 'सीता' 'तुण कौटिल्ये' ।

५८-जो प्रिय परिजन परिकरों पर अत्यन्त प्रेम करे वह 'सीता' 'तिल स्नेहने' ।

५९-जो कभी-कभी रसबुभुक्षा बढाने के लिये प्रियतम के साथ प्रणय कोप भी करे वह 'सीता' तुट् कलह कर्मणि ।

६०-जो कभी-कभी प्यारे को दिखावटी अनादर भाव भी दिखावे तथा अभक्तों-अभिमानियों को सत्यरूप से अनादर करे वह 'सीता,। 'उत्त द् अनादरे, ।

६१-जो कभी प्रियतम की अथवा भक्तों की इच्छा न रहने पर भी कर्तव्य की सफलता के लिये हठात् कार्य करवावे वह 'सीता, । 'तुजि बलादाने, ।

६२-जो कभी-स्वयं प्रेमोन्मत्त बन जाय अथवा प्रियतम तथा प्रेमीजनों को प्रेमोन्मत्त बनादे वह 'सीता, । तुल उन्मादे ।

६३-जो युक्ति तथा तर्क में किसी को आगे न बढने दे वह 'सीता, तर्क भाषायाम् ।

६४-जो कभी वियोग में अपने तथा प्रियतम के तन-मन को जलावे वह सीता 'तप-दाहे' ।

॥ इति माधुर्य्यार्थः ॥

❀ अथ ऐश्वर्य्यार्थः ❀

१-जो 'स' आकाशादि पञ्चतत्व सहित सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करने वाली है वह 'सी' 'ता' माने जगदुत्पन्न करने की कामिका, इच्छा रखने वाली 'सीता। क्योंकि अध्यातम में 'रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोचति' वह तो निष्क्रिय

ब्रह्म बने बैठे हैं। श्री किशोरी जी ही उनसे सब कार्य करवाती हैं।

२-स- पद से लक्ष्मी-गौरी-सरस्वती आदि जगत के उत्पादनादिक कार्य करने की शक्तियां जिनकी सेवा करके प्राप्त करे वह स-। तो पद से द्यूत क्रीडा की भांति देवत्रयी उत्पन्न कर जो संसार तन्त्र चलाती हैं आप स्वयं तो दिव्य धाम में दिव्यक्रीडा करती रहती है वह सीता-।

३-स पदसे बिधि हरि हर देवत्रय जगत् के लिये तथा अपनी सेवा के लिये निज चरणारबिन्दों की रेखाओं से उत्पन्न करे सो सी-। त- पद से पुच्छ ब्रह्म अङ्गदीप्त जगत्प्रकाशनार्थं जिसके हैं वह ता- अर्थात् जगत्कारण भूत ब्रह्मवह अपने तनु तेज से ब्रह्मादिक कल्पना द्वारा जगत् के स्रष्टा है। तत्तेजोऽसृजदिति। श्रुतेः।

४-स पद से धनुष है जिसका वह सी। अर्थात् श्री रघुनन्नन द्वारा स्वयं धनुष धारण करवाकर राक्षसों का संहार करने वाली सीता। प्रणवो धनुः-प्रणव रूप ब्रह्म जिसका धनुष है शरो ह्यात्मा-आत्मा शक्ति ही जिसके बाण है तथा भगवत्प्राप्ति जीवों को ब्रह्म की प्राप्ति कराना ही जिसका लक्षण है वह सीता।

५-स पद से कोप जिसकी अपार शोभा बढाता है तथा ता पद से नीलवर्ण स्वरूप धारण करने वाली-अद्भुत रामायण के सहस वदन रावण का संहार करने वाली महाकाली रूपा

ताण्डवनृत्य करती हुई देखकर श्रीरघुनन्दन सहित सर्व देवताओं ने स्तुति की तब किसी प्रकार शान्त हुई सो 'सीता'।

६-'स' पद से परोक्ष जो ब्रह्मादिक देवताओं को भी है प्रत्यक्षता तो केवल स्वकृपा साध्य ही है 'सी'। 'ता' पद से नीला-श्यामा षोडश वार्षिकी नित्य 'सीता'।

७-'स' पद से 'सस्य' 'त' पद से नील 'नीलाम्बुदजल कलित कादम्बिनो मेघमाला' इत्यर्थ। से 'सी'। अर्थात् सर्व संसार पर्जन्य तथा अन्न जनित है वह मेघ इन्हीं के आधीन है। निर्देश संभूत मेघादि यज्ञादिक का उप लक्षण है उसकी भी स्वामिनी श्रीसीताजी हैं।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवंति पर्जन्या यज्ञकर्म समुद्भवः॥

कर्मं की स्वामिनी यही श्रीसीताजी है महारामायण में श्रीजू के चरणचिह्न से महारुद्र की उत्पत्ति प्रतिपादित है। एक ही शरीर में वामाङ्ग स्त्री तथा दक्षिणाङ्ग पुमान् का होता है अतः सीता राम में अभेद है-

'रामः सीतास्वरूपो वै सीतारामस्वरूपधृक्

इत्यादि प्रमाण हैं अतः श्रीरघुनन्दन के श्रीचरणारविन्दों के चिन्ह द्वारा इनका भी वर्णन आ गया यह सिद्धान्त है।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। गीता।

स उ एष साधुकर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्यो

उन्निनीषति । स उ वाऽसाधु कर्म कारयति
यमेभ्यो लोकेभ्यो निनीषति । इति श्रुतिः ।

शारद दास नारि सम स्वामी
रामसूत्रधर अन्तर्यामी-
'सबहि नचावत रामगोसाईं'
उर प्रेरक रघुवंश विभूषण 'इत्यादि'

:अनयोरन्तरन्नास्ति भेदकृन्नारकी भवेत् ।
'सीतायाश्चरितं महत्' ही रामायण है ।

ऐसा महर्षि वाल्मीकि ने घोषित किया है । सो श्रीराम चरित्र श्रीजानकी चरित्र जानना ।

आरोपयन्ति रामेऽस्मिन् मयैवाचरितानि चेत्'
इति अध्यात्मे ।

अतः कर्म की स्वामिनी भी सीताजी ही हैं, यही सिद्धान्त है ।

८-'स' पद से लक्ष्मी 'श्रीं' यह बीज तथा 'काली-ऊमा कात्यायिनी गौरी काली हैमवतीश्वरी इस अमरकोश के पर्याय शब्द से तद्बीज ह्रीं-और त- पद से पुच्छ ब्रह्म तद्बीज ॐ-उससे यह मन्त्र उद्धृत हुआ श्रीं-क्रीं ह्रीं ॐ-यह चतुर्वर्ग फलप्रद है

श्रीं-से सकल सौभाग्य-सख्य-सौम्पत्ति समृद्धि-शोभा-सन्तति प्रभृति सूचित हुआ ।

'ह्रीं' से लज्जाप्रधान कर्म सुशीलता सौहार्दता साधुता आदि सूचित भया ।

'ॐ' से ज्ञान-वैराग्य-साधनचतुष्टय भक्ति-प्रेम-श्रद्धा-विश्वास

आदि मोक्षप्रद गुण सूचित भया-अन्यान्य चतुष्टय इस प्रकार हैं।
१-हरि-हर-विधि-तुरीय पर-ब्रह्म।
२-महालक्ष्मी-महाकाली-महासरस्वती तुरीया आद्या शक्ति।
३-जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीया अवस्था।
४-अहङ्कार-महत्तत्व-प्रधान-पुरुष।
५-ऋक्-यजुः-साम-अथर्व।
६-साम-दाम-दण्ड-भेद।
७-नृपविद्या-त्रयीवार्ता-दण्डनीति-आन्वीक्षिकी।
८-सोमयज्ञ-वाजपेय-अश्वमेघ-राजसूय।
९--सत्व-रज-तम-साम्य।
१०-भूत-भविष्यति-वर्तमान विभु।
११-प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान-शब्द।
१२-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र।
१३-शिक्षा-व्याकरण-निरुक्त-ज्योतिष।
१४-प्रातः-मध्यान्ह-सायं-संध्या।
१५-कृत-त्रेता-द्वापर-कलि।
१६-मीमांसा-न्याय-सांख्य-योग।
१७-पाताल-भूतल-स्वर्ग-वैकुण्ठ।
१८-श्री-भु-नीला-परमाशक्ति।
१९-अनिरुद्ध-प्रद्युम्न-संकर्षण-वासुदेव।
२०-विश्व-तैजस-प्राज्ञ-तुरीय।
२१-ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्यास।

२२-सत्व-रज-तम-मिश्रित (भोग चतुष्टय)

२३-दास्य-वात्सल्य-सख्य-शृंगार।

२४-वैखरी-मध्यमा-पश्यंती-परा।

२५-आयुर्वेद-धनुर्वेद-स्थापत्य-संगीत।

२६-इतिहास-पुराण-संहिता-रहस्य।

२७-कोश-काव्य-अलङ्कार-नाटक।

२८-उद्भिज-स्वदेज-अणुक-जरायुज।

२९-नाम-रूप-लीला-धाम।

इत्यादि चतुष्टयी इन्हीं चार बीजमन्त्रों से सानन्द सम्भूत है। इसी बीज मन्त्र से सब कुछ होता है। सो श्रीजनक नन्दिनी जू का मन्त्र है। इसी के जपने से सर्वशक्तियाँ शीघ्र प्रसन्न होती हैं।

९-नाम वर्ण सम्भूत बीज का उक्त उच्चारण क्रम नहीं है। विवक्षित प्रथम प्रणव तब अन्य बीजत्रय सर्व सृष्टि कारणभूत ब्रह्म तद्बीज तद्रूप प्रणव प्रथम चाहिये। इससे सूचित हुआ कि जिनके नाम वर्ण के सर्वं कारणभूत ब्रह्म और सर्वं विभूति है इन नामों का परत्व ही कहना चाहिये।

१०-'स' पद से गौरी अधरिमकोण पञ्चक, 'त' पद से शंकर उर्ध्व त्रिकोण चतुष्टय का मिलन करने वाली 'श्रीसीता'।

११-श्रीशंकराचार्यस्वामी ने सौन्दर्यलहरी में कहा है-चतुर्भिश्श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरधः।-श्रीकण्ठःशिख इति -इसमें-चतुर्भि पञ्चभिः-द्वारा पद से त्रिकोण ग्रहण करना चाहिये। अन्यत्र भी तन्त्र में कहा है कि-

चतुर्भिश्शिव चक्रैश्च शक्ति चक्रैश्च पञ्चभिः

शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ।

अन्यत्र भी—

बिन्दु त्रिकोण वसुकोण दशार युग्म

मन्वस्त्र नागदल षोडशाब्जम् ।

वृत्तित्रयञ्च धरणी सदन त्रयञ्च-

श्रीचक्रराज मुदितम्पर देवतायाः ॥

आर तथा अस्य नाम कोण का है पर देवता श्रीजनकनन्दिनी ताःको यह श्रीयन्त्रराज मुख्य गूढ वार्ता यह इन्होंने जिनको प्रसाद करि दिया, उसको भी तब कहाया यों जो है सो अन्यत्र कहा है। यह तत्त्व सो यन्त्र राज कैसा है कि इसी से सृष्टि कहा है तन्त्र·

त्वगसृङ् मांस मेदोऽस्थि धातवः शक्तिमूलकाः ।

मज्जा शुक्र प्राणजीव धातवश्शिव मूलकाः ॥

नवधातुरयं देहो नवयोनि समुद्भवः ।

इति नवयोनि श्रीचक्र योन्याकारस्त्रिकारेणः ॥

नवकार उर्ध्वाधः संयोग से यह स्पस्ट है वह यन्त्र राज शिव शिवाका शरीर जिसके वर्ण से सम्भूत है उसकी प्रशंसा कौन कर सकता है । यही सर्वेश्वरी सर्व नियन्त्रिका 'सीता' ।

१२–'स' पद से हरि सर्वावतारी श्रीरघुनन्दन 'त' पदेन शङ्कर महादेव ये दोनों जिनको प्रेम से वशवर्तित्व करे वह 'सीता'।

१३–'स' पद से हरि विष्णु अवतार 'त' पद से सूकर·यज्ञ वराह अवतारादि जिसकी आज्ञानुवर्ती होकर सर्व कर्म सम्पादन करे वह सीता ।

१४-'स' ईश्वर ऊर्ध्व लोक विहारी, इ सर्वलोक का उपलक्षण है 'त' पदेन तक्षक अधोलोक विहारी सब आज्ञाकारी होकर जिसके आधीन रहें वह 'सीता'।

१५-सी-पद से शूली महादेव स सैन्य जिसकी रक्षा करें वह सहस्र बदन रावणादि उसका ता- कहे घात करने वाली सीता- 'तर्द्दहिसायाम् ड प्रत्यय सिन तर्द्दतीति विग्रहे सिन्युपपदे तर्द्देर्डे टि लोपे पूर्वपदस्य दीर्घः सीतेति सिद्धम्-।

१६-सी- कहे रावण ता-कहे ताको जो हसे कि मृत्यु के बश कैसा अनुचित कर रहा है वह सीता-। तक्क हसनेडप्रत्ययः-।

१७-सि-माने रावण ता- कहै ताको श्रीरामजी का पराक्रम सुना कर डरावै वह सीता-। तर्जं भर्त्सने-।

१८- स- माने सत्कार करने योग्य ब्राह्मण वैष्णव साधु-सन्यासी ऋषि महर्षि देव उपदेव-देव-देव महादेव इन सबका ता- कहे कृपा पूर्वक पालन करे वह सीता- तेज-पालने-।

१९- स- माने परोक्ष परमाणु भूत जीव जन्तुओं का अतिसूक्ष्म दर्शन अविषय ता- कहें पालन करे वह सीता- अर्थात् सर्वज्ञ सूक्ष्माति सूक्ष्म स्थूल सर्व पालिका।

२०- सो- माने उक्त प्रकार से अत्यन्त परोक्ष जीव उनका भी ता- मानें सन्तान वात्सल्य भाव से पालन करे, प्रबन्ध करे वह सीता-। सकल जीव विस्फुलिंगवत् उनही से है, यह भाव ॐ की उत्पादिका सृष्टि की जननी सीता- हैं। ताप्तृ सन्ताने-।

२१-उक्त प्रकार से सी- जीव तिनकी तारिका, ता- मुक्ति दात्री मोक्ष की एकमात्र स्वामिनी सीता-। यह भाव 'तृप्लवन संतरणयोः- से विदित हुआ।

२१-उक्त प्रकार से सी- श्रीरघुनन्दन तिनको ता- माने याचिका तुदिर अर्द्दने- अर्द्दनं याचनम्- भाव यह कि आप सकल जीवों का उद्धार करें भली प्रकार से पालन करें ऐसी प्रेरणा प्रार्थना अपने प्रियतम से करने वाली अर्थात् परम कारुणिकता से से पतिपरवश पातिव्रत्य धर्मवाली श्रीसीता।

२३-सी- रावण उसको उपक्षीण करे' हरणादिक अपराध का फल प्रदान करे सो सीता- तस- उपक्षये।

२४- सी- मानें शिवादि सेवक रावण बाणासुर प्रभृति ता- माने स्वयंवर में उनको अनादर भाव से लज्जित करावे वह सीता-। तृद्-अनादरे।

२५- स- मान लक्ष्मी गौरी जिसकी है वह सी- हरि-हर उनको ता- मानें तनू करण सूक्ष्मी करण लघु करानें वाली। स्व ऐश्वर्य्य वर्य्य सत्तासे वह सीता- तक्षू- तनू करणे-।

"इति सीता शब्दार्थः सम्पूर्ण"।

* अथ 'सिया' शब्दार्थः *

क्योंकि सिया- शब्द भी शुद्ध व्याकरण प्रयुक्त है। देवदत्तादि शब्दवत् अनादि परम्परा से सन्तों के द्वारा श्रीजानकी जी के लिये संकेतित है अतः पूर्वोक्त सीता-शब्दार्थ प्रकार से-

१- सि- मानें श्रीरघुनन्दन तद्विषयक 'य' मानें यत्न करे

सौभाग्य प्रदान करे सो सिया- । यती प्रयत्ने ड प्रत्ययः ।

२- सि- माने श्रीरघुनन्दन को या- माने स्वयंबर द्वारा लोक में प्रकाशित करे वह सिया- । यतृ-भासने- ।

३- सि- माने पति के कामनादिक को विप्रलम्भ द्वारा या- माने नष्ट करदे अर्थात् मृत्यु तुल्य करदे । यह भाव माधुर्य्य में । ऐश्वर्य में सि- माने रावणादिक की या माने हिंसा करावे वह सिया- । यूष हिंसायाम् ।

४- सि- माने श्रीरघुनन्दन से या- माने याचना करे । बन वाटिका केलि क्रीडा के लिये वह सिया- । याचृ याचने ।

५- सि- माने रघुनन्दन को या- माने उपराम करे विहारादिक में अन्यासक्ति जान कर सो सिया- । यम-उपरमे- ।

६- सी- श्रीरघुनन्दन को परिवार की ओर से उपराम करे माता पिता बन्धु परिवार सबसे अधिक प्रीति अपने में करावे सो सिया- ।

७- सि- माने शिवादिक से उपरत हो जाय उनको प्रभुसे तुच्छ जानकर एक मात्र श्रीरघुनन्दन में प्रीति करे वह सिया- ।

८- सि- माने श्रीरघुनन्दन से एकान्त में सुरत प्रवृत्ति में सखी जनो द्वारा विनय करने पर भी अत्यन्त कठिनता से लज्जावश शीघ्र प्रवृत्त न हो वह सिया- । यम- मैथुने- ।

९- सि- माने श्रीरघुनन्दन उनका या- माने पूजन करे । उनकी संगति करे । उनको सुख देवे । यज- देवपूजा सङ्गीतकरण दानेषु सन्तों की सङ्गति करे दोनों को भक्तों को कृपा दान देवे ।

१०- सि- माने हरि हरादि लक्ष्मी गौरी जिनकी पत्नी हैं उनका पूजन करे, अथवा उनके अभीष्ट की पूर्ति करे वरदान देवे सो सिया-।

११-'सि' माने श्रीरघुनन्दन तिनसे मन प्राण मिलाकर रहे तथा कभी-कभी मान लीला भी करे सो 'सिया'। यु मिश्रणेऽमिश्रणे च।

१२-'सि' अपने पति को 'या' प्राप्त होय सेवा में अथवा अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिये जिनको पति प्राप्त है वह 'सिया'। 'या-प्रापणे'।

१३-'सि' प्रेम समाधि में स्थिति हो वह 'सिया' 'युज्-समाधौ'।

१४-'सि' पति उनसे जो प्रेमयुद्ध करे। सो 'सिया' युध्-संप्रहारे।

१५-'सि' श्रीरघुनन्दन तथा सखी जनों को 'या' माने विमोहित करे सो 'सिया'। 'युयु-विमोहिने।

१६-'सि' पति के 'या' माने दुर्गुणों का त्याग करे करावे सो युड-उत्सर्गे!

१७-अथवा उनके लिये कभी सर्वस्व उत्सर्ग करे समर्पण करे, सिया सो 'सिया'।

१८-अथवा-अन्य हरिहरादिक देवताओं को तुच्छ जानकर त्याग करे सो 'सिया'।

१९-अथवा मानलीला में जो पति का क्षणिक त्याग करे। प्रियतम का उत्सर्ग करें सो 'सिया'।

२०-'सि' माने प्राणप्रिय श्रीरघुनन्दन से जो प्रीत्यातिशय से

सम्बन्धातिशय करे सो 'सिया'। युजिर-योगे ।

२१-अथवा वियोग में जो योग साधना करे सो 'सिया' ।

२२-'सि' माने पति को 'या' माने जो प्रीति से बाधे होरी-वसन्तादिक लीला में सो 'सिया' युञ्-बन्धने ।

२३-'सि' माने प्राणपति से 'या' माने जो सङ्कोच करे सो 'सिया' । यतृ-सङ्कोचने ।

२४-'सि' पति को 'या' माने परोसे भोजन करावे सो 'सिया'। यम-परिवेषणे ।

२५-'सि' पति को 'या' माने हास्यबिनोद में जुगुप्सा करे निन्दा करे न्यूनता दिखावे सो 'सिया' 'यु-जुगुप्सायाम्' ।

२६-अथवा त्रिदेवों की अपने ऐश्वर्य से जुगुप्सा करे ।

२७-'सि' माने पति को 'या' माने भूषणालङ्कारों से उपस्कार करे श्रृंगार करे सजावे सो 'सिया' । अथवा राक्षसों को दण्डित करावे सो 'सिया'। 'यतनिकारोपस्कारयोः' ।

२८-सिया माने जो पति का स्नेहातिशय करै।

२९-अथवा समय विशेष पर पति से वार्तालाप विच्छेद करै सो 'सिया' ।

३०-अथवा सखियों द्वारा अपकर्ष न्यूनता समय विशेष पर करै करावे मानहानि लीला कौतुक करे सो 'सिया' ।

३१-अथवा पुष्टोंका उच्छेदन करे सोसिया 'यस्-स्नेहच्छेदापकर्षेषु ।'

३२-सि माने पति को जो सदा हृदय में धारण करे सो 'सिया' 'युष्-धारणे' ।

३३–'सि' पति का जो यशोगान करती रहे। 'यु–भाषायाम्'।
३४–'सि' पति को संयम में रखे प्रेम परवश रखे। 'युच्–संयमने'।

"इति सिया शब्दार्थः"

इस प्रकार सीता शब्द के अनेनकार्थ है। हजारों प्रकार से

इतिशम्।

पठनीय—श्लोकाः

(श्रीसीतास्वरूप-प्रतिपादकाः)

ध्याये स्वर्णाभकान्ति सरसिजनयनां पूर्णचन्द्रस्मितास्या
सीतां रमाङ्कवामां प्रहसितवदनां सुन्दराकार देहाम्।
विद्युत्पुञ्जाभवस्यां बहुमणिखचितान् भूषणान्काञ्चनानाम्
बिभ्रन्तीमम्बुजाक्षीं धृतशिरसुमनैर्मञ्जुलं रत्नमौलिम्॥

(२)

कल्याणं नो विधत्तां त्रिभुवन जननी जानकी भूमिजाता-
चिच्छक्तिर्वासुदेव विधि हरनिकरे पञ्चतत्त्वेनुचन्द्रे।
बिभ्रन्ती पाणियुग्मे सरसिजकलिका मालिकां रामकण्ठे-
गच्छन्ती राजरङ्गे सखिगणसहितादातुमम्भो रूहाक्षी॥

(३)

स्वर्णाम्भोजाभवर्णा सरसिजनयना पूर्णचन्द्रामितास्या-
पश्यन्ती रामरूपं परिकररचितं चापखण्डं तमेकम्-
शृण्वन्ती चारुशब्दं जय-जय विमलं देवता ब्राह्मणानां
विप्राण्यारधिताद्या ऋषिजनकसुता पातुमांसर्वदा सा॥

(४)

यः कोदण्डमतोलयद् गिरिसुता पाथोज पादार्चकोः
दर्भैस्तोयतिलैश्च यो रघुपतेः पाणौस्थितो भूषितः ।
यो वैकौतुकमन्दिरे युवतिभिः प्रादाद्धविस्तन्मुखे-
सः सीताकरपङ्कजोऽवतु सदा योबाहुमूले स्थितः ॥

(५)

यः सिद्धैः मुनिपुङ्गवैः सुरगणैः संसेवितः पूजितनो-
ब्रह्मेशान पुरन्दरादिभिरलं श्रीखण्ड संचर्चितः ।
भक्तानां भवबन्धताप सरणस्तीर्थास्पदः शोभनः-
सः सीता पद पङ्कजो ददतु मे श्रेयांसि सन्तानकः ॥

(५)

अस्माकं जनकात्मजा युवतिमिर्नर्मीकृता विष्ठिता-
विप्राणी गुरुरङ्गनाशिवमलं संभृणवती सुस्मिता ।
श्रीमन्मैथिलराजकौतुक गृहे गन्धाकृताऽधिष्टता-
सा भद्रं नितरां तनोतु सततं रामस्य वामान्विता ॥

(७)

देवि ! प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद प्रसीदमातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहिविश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ।

(८)

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलं बलञ्च ।
साजनकी सुजगतां परिपालनाय नाशायचाशुभयस्यमतिं करोतु ॥

(९)

सीते ! स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैस्स्मृतामति सतां वसुमां ददासि ।
दारिद्र्य दुःख भयहारिणि काऽत्वदन्या
सर्वोपकार करणाय सदार्द्र चित्ता ॥

(१०)

त्वमेवमातर्ममदीन सूनोः निराश्रयस्यापि परावलम्बः ।
तस्मात्त्वदीयं चरणारविन्दं विहाय मातः क्वमनुप्रयामि ॥

(११)

पुरन्दर पुरन्ध्रिका चिकुर बन्ध सैरन्ध्रिका–
पितामह पतिव्रता पटुपाटीरचर्चारता ।
मुकुन्द रमणी मणिलसदलं क्रिया कारिणी–
नमामि मिथिलेश्वरी सुरवधू टिका चेटिकाम् ॥

(१२)

कृपारूपिणी कल्याणि राम प्रिय श्रीजानकि ।
करुणापूर्ण नयने दयादृष्ट्या विलोकय ॥
सर्व जीव शरण्ये श्रीसीते वात्सल्य सागरे ।
मातर्मैथिलि सौलभ्ये रक्षमां शरणागतम् ॥
कोटिकन्दर्प लावण्यां सौन्दर्यैक स्वरूपताम् ।
सर्व मङ्गल माङ्गल्यां भूमिजां शरणं व्रजे ॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे ।

सर्वस्यार्ति हरणैक धृत व्रतां शरणं व्रजे ॥
निस्सीम करुणा पूर्ण वात्सल्यैक महोदधिः '
कान्ता श्रीराघवेन्द्रस्य सर्वदा पातु जानकी ॥
श्रीरामहृदयाधीशां करुणाद्भुत मानसाम् ।
नुमः प्रेममयीं सीतां मिथिलाधरणी सुताम् ।'

(१३)

लोके वनस्पति बृहस्पतितारतम्यं यस्याः कटाक्षपरिणाममुदाहरन्ति
साभारती भगवती तु यदीय दासी तां देव-देवमहिषीं श्रियमाश्रयामः
यस्याः वीक्ष्यमुखं यदिङ्गित पराधीनो विधत्तेऽखिल—
क्रीडेयं खलु नान्यथास्य रसदा स्यादेक रस्यात्तया ॥

'श्रुति सीमन्त सिन्दूरी कृतपादाब्ज धूलिका"

(१४)

सीतामेशरणं विदेह तनया, सीतां भजे सप्रियाम्—
संरक्ष्योऽस्मि च सीतया, जगति सीतायै नमः सर्वदा ।
सीताया ननु का पराश्रुतिषु, सीतायाः प्रपन्नोस्म्यहं—
सीतायां रतिरस्तु मे शुभतरा, सीते प्रसन्ना भव ॥

(१५)

श्रीजानकी द्वादशनाम

मैथिली-जानकी-सीता-वैदेही-जनकात्मजा ।
कृपापीयूषजलधिः-प्रियार्हा-रामवल्लभा ॥
सुनयनासुता-वीर्य शुल्काऽयोनि रसोद्भवा ।

द्वादशैतानि नामानि वाञ्छितार्थं प्रदानि हि ॥

(१६)

"नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ताजननीं स्मरन्ति

यदिस्यां तव पुत्रोऽहं मातात्वं यदि मामकी ।

दयापयोधरस्तन्य सुधाभिरभिसिञ्च माम् ॥

(१७)

यत्रास्ति भोगो नहि तत्रमोक्षो यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्रभोगः ।

श्रीसुन्दरी सेवन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

(१८)

जातापराधमपिमामनुकम्प्यमात गोप्त्री यदि त्वमसियुक्तमिदंभवत्या ।

वात्सल्यनिर्भरया जननीकुमारंस्तन्येनवर्धयतिदष्टपयोधराऽपि ॥

(१९) (२८६)

रामो हि वश्यो भवति हि सीता चोच्चारणादेव जयन्ति सीताम् ।

भूत्वानुगामो भजते प्रियस्तान् ब्रह्मेशशक्रार्चित राजपुत्रः ॥

विभाति सीता सखि सुन्दराङ्गी विशालनेत्रा रसरूपराशि' ।

श्रीराम नेत्रोत्सव जीवना च मनोहरा रामरति प्रदात्री ॥ २८४ ॥

सीतां विना ये सखि कोटि कल्प समास्तु रामं जनकात्मजासुम् ।

ध्यायन्ति निन्द्याश्रम भागिनस्ते रामप्रसादाद्विमुखा भवन्ति ॥२८५॥

न मंत्रं नो यंत्रं तदपि न च जाने स्तुति महो-

न चा ह्वानं ध्यानं तदपि न च जाने स्तुति कथा ।

न जाने मुद्रास्ते तदपि न च जाने विलपनं-

परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥

जगन्मातर्मातस्तव चरण सेवा न रचिता--
न वादत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरूपमं यत्प्रकुरुषे-
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥
अयःस्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं-
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघ मिलितम्-
तथा तत्त्वत्पादै रतिमलिन मन्त्रर्मम यदि ॥
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥
प्रभूताभक्तिस्ते यदपि न ममा लोलमनस-
स्त्वयातु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना ।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातक मुखे-
भृशं शंके कैर्वा विधिभिरनुमीता मम मतिः ॥
देव्यापराध क्षमापनम्—

कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधु चरिते-
न ते युक्तोवेक्षामयि शरणदीक्षामुपगते ।
न चे दीष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका-
विशेषः सामान्यैः कथमितर वल्ली परिकरैः ॥
विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नाय जननी-
त्वमर्थानां मूलं धनद नमनीयाङ्घ्रिकमले-
त्वमादिः कामानां जननिकृत कन्दर्प विजये-
सतां भक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्म महिषी ॥
आनन्द लहरी-

श्रीजानकी मन्त्र पद्धति स्त्रोत्रम् १९

ॐ वैदेही-मैथिली-सीता-जानकी-जनकात्मजा ।
भूमिजा-रामजाया च योगमाया-कुशानुजा ॥
अशोक वाटिका संस्था सती च त्रिजटासखी ।
विमला-बहिन संस्था च पुष्पकासत संस्थिता ॥
स्वश्रू शुश्रूषणापरा-देवी-दशरथस्नुषा ।
वरदा-वायु पुत्रस्य कुशमाता कुशेशया ॥
एकविंशति नामानि कुजायाश्च पठेत्तु यः ॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रामलोकं स गच्छति ।
मन्त्रपद्धत्तिकं स्तोत्रं जानकी कल्पभूरुहम् ।
न दातव्यं न दातव्यं न दातव्यं कदाचेन ॥
इति श्रीसुन्दरी तन्त्रे श्रीहनुमत् कृतं
मंत्र पद्धति "श्रीसीता पटल स्तोत्रम्"

"श्रीसीतापटल–स्तोत्रम्"

सूत–उवाच–

गृहे सीता वने सीता सीताराम परायणी ।
सीता योगेश्वरी राज्ञी सीता आराधितामया ॥
सीतास्वयंभुवा देवी सीता वै भूमिनन्दिनी ।
विदेह तनया सीता–सीताआराधिता मया ॥
सीता वाल्मीकि पुत्री च सीता बुद्धि प्रवर्धिनी ।

श्रीरामवल्लभा लक्ष्मी सीता आराधिता मया ॥
सीता विश्वस्य माता वै सीता गुप्ता महेन्दिरा ।
सीता रत्नोनता ख्याता नस्मातु शोभना सती ।
इदं वै हनुमत्प्रोक्तं सीतानामात्मकं महत् ॥

सीतास्तोयं पठेद्यस्तु सरामप्रियतां व्रजेत् ॥
हृदं स्तोत्रं महापुण्यं जानक्या पटलं शुभम् ।
महागोप्यं महागोप्यं न देयं प्राकृते जने ॥

इति श्रीसुन्दरीतन्त्रे श्रीहनुमत्प्रोक्तं

॥ श्रीसीतापटल स्तोत्रम् ॥

(२१)

अगुण सगुणरूपौ वेद वेदान्त सारौ-
निरवधिसुषमाढ्यौ भूषितौ स्रविणौ तौ ।
जलधर चपलाभौ रत्नसिंहासनस्थौ-
परमकरुणाचितौ नौमि सीतां च रामम् ॥

(२२)

चकर्थ यस्याः भुवनं भुवान्तरं तवप्रियधाम यदीयजन्मभूः ।
जगत्समस्तं यदपाङ्ग संश्रयं पदर्थमम्भोधिरमन्थ्य बन्धि च ॥
स्व वैश्वरूपेण सदानुभूतयाप्यपूर्ववद् विस्मयमादधानया ।
गुणेन रूपेण विलासचेष्टि तौ सदातवैवोचितया तव श्रिया ॥

त्वगणगुवत् त्विप्त षरादिकालया प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ।

श्रीआलवंदार स्तोत्रम्-

(२३)

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम् ।
मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम् ॥

(२४) —श्रीमैथिली महोपनिषद्

पद्मयोनिरिदं प्राप्य पठन्स्तोत्रं ततः क्रमात्
दिव्यं चाष्ट गुणैश्वर्यं त्वत्प्रसादाच्च लब्धवान्

—ब्रह्माण्डपुरारह्मम् ।

(२५)

ज्ञानंनिरञ्जनमिदं विवदन्तियेते मुह्यन्ति सूरिनिवहास्तरुणी कटाक्षैः
नालोकयान्ति नितरां तवदेवि तावत् दीर्घायुषाक्षि युग्ममञ्जनरंजितंते
धन्यास्त एव तवदेवि पदारविन्द स्पन्दात्स्यमान मकरन्द महर्निशं ये
भृङ्गयमान मनसो नितरां भजन्ते भाववबोध निपुणाः परदेवतायाः॥

(२६)-श्रीजानकी स्तवराजः, १७।३३

श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ।
वैदेही शोक सन्तप्ता हुतासनमुपागमत् ॥
मङ्गलाभिमुखीतस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयतां हव्यवाहनम् ॥
यद्यस्ति पति शुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वास्त्येक पत्नित्वं शीतोभव हनूमतः ॥

उसका प्रभाव

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न माँ दहति सर्वतः ॥
दृश्यते च महाज्वालः करोति चनमे रुजम् ।
शिशिरस्येव सम्पातो लांगू लाग्रे प्रतिष्ठितः ॥
-श्रीवाल्मीकि-सुन्दर काण्डे

प्राणिपात प्रसन्नाहि मैथिली जन्कात्मजा ।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥
—सुन्दर कान्डे त्रिजटावचनम्

(२७)

अस्येशानाजगत इति तेधीमहे ध्यां समृद्धिं
श्रीः श्रीसूक्तं बहुमुखयते तञ्चशाखानुशाखम् ।
ईष्टे काश्चिज्जगत इति यः पौरुषे सूक्त उक्त
स्तञ्च त्वत्कंपतिमधिजगावत्तरश्चानुवा कः ॥
उद्वाहुस्तामुपनिषदसावाह नैकां नियन्त्रीं ।
श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे ।
स्मर्त्तारोऽस्मज्जननि यतमे सेतिहासैः पुराणै-
र्निन्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम् ॥
—कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीताया श्चरित्तंमहत्

युवत्वादौ तुल्येऽप्यपरवशता शत्रु शमनः
स्थिर त्वादीन्कृत्वा भगवति गुणान्पुं स्त्वसुलभान्
त्वयि स्मीत्यैकान्तान्मृदिम पति पारा करुणा-

क्षमादीन्वा भोक्तुं भवति युवयोरात्मनि भिदा ॥
स्वबुध्यैव प्रोक्तं प्रणत सुमुखीति त्रिजटया-
न चैतद्धर्मस्ते नलिनदलनेत्र प्रियतमे ।
यदेकाक्षी प्रख्यायत बहुल हिंसानवधिक-
प्रवृद्धाद्रागस्काः पवनतनयाद्रक्षितवती ॥

(२९)

अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च भूमौ चशय्या नियमश्च धर्मे ।

अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ।
अनन्याहि मयासीता भास्करेण यथा प्रभा ॥
यथाऽहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवि ! विवरं दातु मर्हति ॥

"सीतावतार मुखमेतदमुष्य योग्यम्"

जेहि विरञ्चि सियरची संवारी ।
तहि श्यामल वर रचेऊ विचारी ॥
अनुरूप वर दुलहिन परस्पर
लखि सकुचि हिय हार्षं ही ॥

—ॐ—

श्रीकिशोरीजू के सुन्दर भजन

(१)

यह जनकललली को ध्यान है ।

राम उपासक शुचि सन्तन को, सरवस जीवन प्राण है ॥

कञ्चन रचित सुभग भद्रासन, मोतिन की लहरान है ।

तापर वेदी चन्द्र ज्योतिसी, आनन चन्द्र समान है ॥

लाल चरणतल, लालै करतल, लाल वसन परिधान है ।

अंग-अंग लखिपरत मनोहर, भूषण की झमकान है ॥

दोउ कर कमलन कमल विराजत, सखी पवावत पान है ।

चँवर ढुरत गृह महँ-महँ-मँहकत, वाजत देव निशान है ।

(२)

श्रीजानकी आदि नामन के अरथ रमन मेरे मन में

काल-सुभाव-करम-गुण चारिऊ, जगत जनक जाहिर जनम ।

तिनकी जान-जानकी ताते गाइ वेद पुराणन में ॥

श्रुति को सार मथितसोई मिथिला प्रगट भई तेहि वसुधन में ।

सोई मैथिली झलक रही है, योगि जनक के ध्यानन में ॥

जीवन्मुक्त विदेह दशा से जे विहरत गहिरे बनमें ।

तिनको परमतत्त्व वैदेही, जिनि भूलहु बकवादन में ॥

जोई जानको सोई वैदेही सोई मैथिली जानन में ।

एक अनेक भांति से गाई देवनदी जस लोकन में ।

(३)

श्रीजानकी नाम मनोहर मीठ ।

जापक जन सुखदायक सीधो, जनुसिद्धिनको पीठ ॥

महावरहुँ घोरत रंगोली, जैसे रंगमजीठा ।
रसना पर आवत जनु पायो, सियदरसन को बींठ ॥
जाके मनन गुननते झलकत, अन्तर बाहर दीठ
वरुश काल फांस छोरत, बड़ो जबर यह दीठ ॥
अन्तर बाहर कोमल धोवन जस अम्बर को रीठ ।
जाके रसके आगे लागत-देवसुधाहुं सीठ ॥

(४)

सीता नाम जगत में मंगल श्रुतियन को सरवस है ।
सबकी सीमा आप असीमा, सी- में इतनौ रस है ॥
तारक अर्थ रहयो ता- पदमें, यामें का कसमस है ।
सत्ता-ईश्वरता औ तानन, त्रिक सीता- के वश हैं ॥
ताते सीता नाम कहत पै, माया की घसमस है ।
नागर रेखा से सीता- पद ऐसी बहुत बहस है ।
सती सोई सीता यामें तो पतिवरता को लस है ।
दीन अधीन देव रस पावै, सन्त मतों यह हस है ।
काजानै है अहंता जिनके, व्यापि रही नस-नस है ॥

(५)

सियाजू में दीन बन्धुता पाई ।
अविचल नखशिख छाई ॥
'सीत' नाम जूठनसे नीको, हलरेखहुँ मैं निचाई ।
ऊँच नीच सिगरे पद तजिके 'सीतै' नाम कहाई ॥

भालन पर बालन को राखौ अति सनेह चिकनाई ।
मधुर सुधा 'अधरन मे' राखी माथे पर करिआई ॥
दोऊकर 'कङ्गनको राखै, 'हार' उरन लहराई ।
धरी 'कुटिलता' दोउ भौंहनमें पेटन मांहि खलाई
अक्रम धरे करनमें पगमें, रही 'मन्दता' छाई ।
देखन जरसे लखहु पटन में, मलमल बहुत सोहाई ॥

(६)

सियजू की सर करि सकत न राम ।
याको न्याव करहिं बेदागी; यहां न हठको काम ॥
जनक देवैया रामलेवैया, काको ऊँचो धाम ।
जगमें प्रथम सिया कहि पाछे, परत रामको नाम ॥
श्रीपद ही से सबकी शोभा, सो 'श्री सियालखाम ।
सीय चरित ही धरे रामपर, ऋषि की यही कलाम ॥
केश सँवारन पग धोऊनमें, को पवि वनत गुलाम ।
देख रहस्य समुझि मनु सुमिरहु, सिय को आठोयाम ॥

(७)

सियजू की करुणां लखि नहि जाय ।
राम की तौ लखाय ॥ सियजू की ॥
कबनिउ मिस ते राक्षस मोपर,,प्रेम करें सुखराय ।
यह करुणा चुराय पति व्रत मिस, चली वनहि हरषाय ॥
करि दुर्दशा हरत रावण कहां दियो स्वरूप चिन्हाय ।

मैं अठारही पति पचीस औ उभिरन में बहकाय ॥
रामचन्द्र से प्रेम करैं तब सुखी होयँ कपिराय ।
तेहि कारण अपने पट भूषण, कपि पर दीन्ह चलाय ॥
रावण मति पलट को चाहत, सपनेहुँ रण न सुहाय ।
पति देवता न आपु कशनिसो; पति की शुचि सुख पाय ॥
सियाजू की करुणा लखि नहिं जाय ।

❀ "श्री-सीतातत्त्वमुपास्महे ❀

इच्छा ज्ञान क्रियाशक्तिस्त्रयं यद्भाव साधनम् ।
तद् ब्रह्मसत्ता समान्यं सीता तत्त्वमुपास्महे ॥
इच्छाशक्तिस्त्रिविधा । श्री-भू-नीलात्मिका ।
मृदुरूपिणी प्रभावरूपिणी सोमसूर्याग्निरूपा भवति ॥
श्रीदेवी त्रिविधंरूपकृत्वा भगवत् सङ्कल्पानु-
गुणयेन लोकरक्षणार्थं रूपं धारयति ।
भूदेवी ससागराम्भस्सरूपतद्वीपात्ससुन्धरा भूरादि
चतुर्दश भुवनानामाधाराधेयात्मणवात्मिका भवति ।
नीला च विद्युन्मालिनी सर्वौषधिना ।
सर्वप्राणिनां पोषणार्थं स्वरूपा भवति ॥ ७ ॥
क्रियाशक्तिस्वरूपं हरेर्मुखान्नादः तन्नादात् बिन्दुः ।
बिन्दोरोंकारः ॐ कारात्परतो राम वैखानसपर्वतः ॥
साक्षात्शक्तिर्भगवतः स्मरणमात्ररूपाविर्भाव

प्रादुर्भावात्मिका । निग्रहानुग्रहरूपा । शक्तितेजोरूपा । व्यक्ताव्यक्त कारणाचरणा समग्रावयवमुखवर्णभेदा-भेदरूपा । भगवत्सहचारिणी । अनपायिनी अनवरत सहाश्रयिणी । उदितानुदिताकारा निमेषोन्मेष सृष्टि स्थिति संहार तिरोधानानुग्रहादिसर्व शक्ति सामर्थ्यात् साक्षात्शक्तिरिति गीयते ॥ १० ॥

—":श्रीतोपनिषद्"

जो कोउ कोटि कल्प लौं जीवे, रसना कोटिक पावै ।
तऊ रुचिर वदनारविन्द की शोभा कहत न आवै ॥

(८)

परम धन सीता नाम उदार ।
आगम निगम पुराण वखानत, काहु न पायो पार ॥
जो पावत सो अतिसुख छावत, वहत न पुनि भवधार ॥
जाको जपत मिलत रघुपति अति हितसौं बाहुपसार ॥
परम सुखद माधुरी लालकी, प्रगटत हिय सुखसार ।
'मधुपअली' वाही को निशिदिन; जपिये बारंबार ॥

(९)

सियजू मोहि भरोस तिहारो ।
सुनु मिथिलेश दुलारी लडैती आपनो विरद संभारो ॥
नातो नाम गांव मिथिलाको, और न कोउ हमारो ।

'मनभावन की यह विनती है, चरणन ते जनिटारो ॥

(१०)

तिरु (श्री) पल्लाण्डु (मङ्गलानुशासने)

उक्तञ्च　　　—०—　　　द्राविडायाम्नाये

श्रीवक्षस्थलविहारिणी नित्यमङ्गलशालिनी भूयात्

पुष्पं सौरभेण-रत्नं प्रभया—सूर्यो ज्योत्स्ना-
तथैवसर्वेश्वरो श्रीसम्बन्धादेव प्रकाशितः ।
कारुण्यरूपिणी नित्यमज्ञातनिग्रहा परमानुग्रह-
मयी देव—देव दिव्यमहिषी विजयिनी भव ।
॥ श्रीभट्टनाथ सूक्तम् श्रीविष्णु चित्त सूरि प्रबन्धः ॥

(१०)

॥ श्री-श्रीनिवासयोः संवादः

श्रियः पतिर्भगवान् 'पितेवत्वत्प्रेयान् जननिपरिपूर्णागसिजने हितश्रोतोवृत्याभवति चकदाचित्कलुषधी' । तदात्वे—कारुण्यरूपिणी नित्यमज्ञातनिग्रहा परमानुग्रहमयी देवदेवदिव्यमहिषी 'किमेतन्नि-र्दोषः कइह जगतीतिमुचितैरुपायैर्विस्मार्यं स्वजनयसि माता तद सिनः । 'इत्युक्तरीत्या घटक कृत्यं कुर्वती कथमपि घट्यति साप-राधान् अपिचेतनान् प्रणत्यभिमुखान् भगवतासह । अथ साजग-न्मता-मन्नाथेन कृतोऽयमङ्गीकारः किं मदीय निर्बन्धमूलक उत स्वकीयदृढप्रेम मूलक **इति परिज्ञानार्थं केशवण दोषा नाचाष्टे-**

भगवान् ! प्रमादतो मयाऽमीषां घटककृत्यं कृतं; गुणोदाहरण पूर्वकम् । किन्तु विमर्शकृते दुष्टा एवामीनस्वीकारार्हा-इति ।

तदा भगवान् प्रतिवक्ति—प्रिये ! त्वद् भक्ता कदाचन दुष्टा अपिस्युः मद् भक्तास्तु न कदापि तादृशास्युः।

पुनरपिभर्तुरध्यवसाय दृढिमानं जिज्ञासमाना चेतन दौष्टयं ब्रवीति तदाभगवान् प्राह—

"यद्यपि कृतदोषास्युः कृतसच्चरिता एव"

एतेन संवादेन श्रियः श्रीपतेः वात्सल्यातिशयः अप्रकम्प्य भक्तानुग्रह महिमा च प्रकाश्यते ! 'दोषेस्वपिगुणत्व बुद्धिरेव वात्सल्यम्' इतिपूर्वाचार्याणां सिद्धान्तम् अत्रशंका अस्मदीयान् दोषान् भगवान् भोग्यतया पश्यति इति ज्ञानम् सर्वेऽपिजनाः बुद्धि पूर्वक सततं दुरिताचरणेसु समुत्सुकाः स्यात् अत्र सिद्धान्तम्—

भगवतः कल्याण गुणास्सन्ति भूयांसः तेषां लक्ष्य भूताश्चेतनाः के इति कोऽपि न ज्ञातुमिष्टे-

नाऽसौ पुरुषकारेण न चाप्यन्येन हेतुना ;
केवलं स्वेच्छयैवाहं प्रेक्षे कश्चित् कदाचन ॥

यदा कदाचित् कस्मिंश्चिज्जने तस्य वात्सल्यस्य सप्रेमपूर उद्वेलनं प्रसर्पति तदा स भगवान् तस्यपुंसो दोषानपि गुणतया भावयन् अत्यर्थं प्रीतिमात्मनः प्रख्यापयति, कदाको वा चेतनो विषयी क्रियतेति सत्यं न कोऽपि वेद । एवं सतिबुद्धि पूर्वकं पापाचरणं सर्वथाप्यसक्तम् ।

पापवंतकर सहज स्वभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ ।
तथा- सन्मुख होई जीव मोहि जब। जन्म कोटि अघनाहीं तबही
अत्रेदं विचारणीयम्—प्रथमतः श्रीरमाप्राह—सम्प्रति स्वीकृता अमी

[illegible] दुष्टाः । तत्रोक्तं भगवता न कदापिममभक्ता दुष्टाःस्युः ।
पुनरपिप्राह जगन्माता–दुष्टा एवामी तदाभगवतोकथिते–तर्हि
दोष भोग्यः भवानीति ।

प्रथनं किं नौक्तम्–साग्रहे दोषत्वे कथिते प्राह हरिः ।
तत्रेदं रहस्यम् । भक्तानां दोषाचरणं तु वर्जनीयमेव सर्वथा ।
इति सास्त्रार्थस्यापि प्रकाशनीयतया नैव मद्भक्तादुष्टास्युरिति
प्रोक्तम् तथा स्वाश्रितत्वेन स्वीकृतेषु न मे दोष बुद्धिरुदियात्
इति स्वकीयगुण विशेषोऽपि प्रकाशितः । श्रीविभीषण शरणा-
गति प्रसङ्गे ।

दोषो यद्यपितस्वस्यात् सतामेतदगर्हितम् । इत्युक्तं
करुणानिधानेन श्रीरामचन्द्रेण—मारुते ! नास्ति दोषः कथ-
नस्य किं प्रयोजनम् । अस्तु नाम कामं दोषः । स्वगुणातिशय
सिद्धये तदन्वेषणतत्परस्य ममदोषः किं हेयास्स्युः । इत्याशयः ।
आविष्कृतस्य भगवतो विशृंखल विसृत्वरं वात्सल्यं को
निरोद्धुं क्षमः ?

❀ श्रीसीता मन्त्रराज षडक्षरी स्तोत्रम् ❀

श्रीविदेहात्मजे प्राणनाथप्रिये स्वामिनी त्वं मदीयाऽसि सर्वेश्वरी ।
चारु फुल्लासिताम्भोज पत्रेक्षणे सर्वं भावेन तां त्वाँ श्रयेऽहं श्रये ॥१॥

सीति वर्णस्तु यस्याः शुभो नाम्निवै पूर्वकोऽर्थं प्रदः शोकसन्तापहा ।
तुष्टिदः प्रेयसो वक्तृकल्पद्रुमः सर्वभावेन तां त्वांश्रयेऽहं श्रये ॥२॥

तास्त्रियस्तेनराश्वेह लोकत्रये पूजनीयोत्तमाः सर्व देवर्षिभिः ।
याश्चयेत्वत्कृपा भाजनान्यर्थदं सर्व भावेनतां त्वांश्रयेऽहं श्रये ॥३॥

यैरहोनादृतात्वत्पदाम्भोरुहे कौमलेभक्तकल्पद्रुमौ सुन्दरे ।
तैर्न वै लभ्यते सिद्धिरेवेप्सिता सर्वं भावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥४॥

स्वामिनी त्वं हिता सर्वमोदप्रदा सर्वं कल्याणदारूपशीलेहिनः ।
त्वां समाश्रित्य किं नो सुखंभुज्यते सर्वभावेन तां त्वांश्रयेऽहं श्रये ॥५॥

हारिणी संसृतेः सर्वकामप्रदा प्राणनाथासुभूते जगन्मङ्गलम् ।
यानुता ब्रह्म विष्वीश शेषादिभिः सर्वभावेनतां त्वां श्रयेऽहंश्रये ॥६॥

॥ इति श्रीसीतामन्त्रराज षडक्षरी स्तोत्रम् ॥